वर्ष ६, अंक ४

श्रीकृष्णाय नमः

फरवरी

पौष, १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक -
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	देशोपदेश	...	९७
२.	पुराण-गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी ...	...	९८
३.	श्री सत्य नारायण पूजन [ले० श्री गङ्गाराम विश्व कर्मा "विशारद"	...	१०२
४.	तुम्हारी ओर [ले० श्री बी. एड. सराफ, बी. ए., एल एल. बी. ...	...	१०४
५.	प्रमाद (कविता) [ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी "विशारद" आश्रम	...	१०९
६.	षट् प्रमाण संग्रह [ले० श्री महात्मा राम आश्रम ...	...	११०
७.	चित चोर (कविता) [ले० श्रीमती ब्रज कुमारी "प्रभाकर" आश्रम	...	११३
८.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती ...	...	११४
९.	भक्तों का ध्येय [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी 'विशारद' आश्रम	...	११८
१०.	भगवान् की चाह [ले० श्री प्रभुदत्त शर्मा, शास्त्री ...	...	११९
११.	उपदेशामृत [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	...	१२४
१२.	भजन [संग्रहकर्ता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम	...	१२५

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुवा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	२५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

श्रीरामके चरणोंमें भरत

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पीप, ता० १ फरवरी, १९३५ | अंक ४ पूर्ण संख्या ९६

वेदोपदेश

तमीडत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥

मनुष्यो, स्वामी अग्नि के पास जाकर उनकी स्तुति करो। वह देवों में मुख्य यज्ञ-साधक हैं। वह हव्य द्वारा आहूत और स्तोत्र द्वारा तुष्ट होते हैं। वह अन्न के पुत्र प्रजा-पोषक और दानशील हैं। देवों ने उन धनद अग्नि को दूत नियुक्त किया था।

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य चक्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥

पहले और इस समय अग्नि सारे धनोंका आवास-स्थान हैं। जो कुछ उत्पन्न हुआ है या होगा, उसके निवासस्थान हैं। जो कुछ है और भविष्यत् में जो अनेकानेक पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनके रक्षक हैं। देवोंने उन धनद अग्नि को दूत रूपसे नियुक्त किया है।

पुराण-गाथा

गतांक से आगे

प्रह्लाद के गुणों का वर्णन।

[ले०-श्री स्वामी भोले बाबाजी]

नारद-हे शौनक! जब हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा जी से इस प्रकार वर मांगा, तो वे इसके तप से प्रसन्न होकर उन दुर्लभ वरों को देते हुए इस प्रकार कहने लगे।

ब्रह्मा-हे तात! जिन वरों को तू मुझसे मांगता है, वे वर मनुष्यों को बहुत ही दुर्लभ्य हैं, फिर भी मैं तुझे इन दुर्लभ वरों को देता हूं, क्योंकि तूने अत्यन्त कठिन तप किया है।

नारद-हे ऋषे! इस प्रकार हिरण्यकशिपु दैत्यराज को वरदान देकर ब्रह्मा जी प्रजापतियों सहित चले गये। वर पाने से दैत्यराज का सुवर्णमय दिव्य शरीर होगया और वह अपने भाई हिरण्याक्ष के वध का स्मरण करके भगवान से द्वेष करने लगा। उसने सब दिशाओं को और लोकपालों को जीतकर देव, असुर, मनुष्य, गंधर्व, गरुड़, उरग, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूतपति, इन सबको और इनके अधिपतियों को जीतकर और अपने वश करके लोकपालों के स्थानों को छीन लिया और स्वर्ग में अपना आसन जमादिया, इस स्वर्ग का वर्णन इस प्रकार है।

स्वर्ग का वर्णन-यह स्वर्ग देवताओं के बनाये हुए उद्यानों की शोभा से युक्त है। इसमें महेन्द्र का भवन साक्षात् विश्वकर्मा का बनाया हुआ है, संपूर्ण ऋद्धियों से युक्त है और तीनों लोकों में लक्ष्मी का स्थान है। इस भुवन में विद्रुममणि के सोपान हैं, महामरकत मणि का फर्श है स्फटिक मणि की दीवारें हैं, वैडूर्यमणि के खम्भों की पंक्तियां हैं, चित्र वितान हैं, परमराग के आसन हैं, दूधके फेन के समान कोमल और श्वेत शय्यायें हैं और मोतियों की लड़ियों की झालरें हैं। वहां पर अप्सरायें अपने नूपरों की झंकार करती हुई इधर उधर घूमती हैं और रत्न स्थलियों में अपने सुन्दर दांत वाले सुन्दर मुख को देखती हैं।

हे शौनक! उस महेन्द्र भवन में महाबली, महा मन वाला, सब लोकों को जीतने वाला क्षत्रपति हिरण्यकशिपु रमण करता और उस अचंड शासन करने वाले के दोनों चरणों की हाथ में भेंट लिये हुए देवता आदि सेवा करते थे। वह तीव्र गंध वाली सुरा की गंध से मत्त रहता था उसकी आंखें नशे के कारण से तांबे के समान लाल रहती थी, सिवाय ब्रह्मा, विष्णु और महेश के सब देवता उपासना करते थे। हे शौनक! महेन्द्र के आसन पर बलात्कार से बैठे हुएको विश्वावसु,

तुंबुरु आदि गंधर्व गायन सुनाते थे, सिद्ध ऋषि और विद्याधर उसकी स्तुति करते थे और अप्सरायें उसके सामने नृत्य करती थी। चारों वर्णाश्रम वाले बड़ी २ दक्षिणाओं से जिन देवताओं के उद्देश से जितने यज्ञ करते थे, उन देवताओं के भाग को यह दैत्य अपने तेज से हरलेता था। सात द्वीप वाली पृथिवी बिना जोती हुई ही उसे अन्न देती थी, स्वर्ग सब लोगों को देता था और आकाश अनेक प्रकार के आश्चर्य रूप स्थान देता था। रत्नाकर समुद्र क्षार घृत, मधु, दधि, क्षीर, अमृत और जल रूप रत्नों के देते थे और नदियां उछलती, हुई तरंगों सहित वहन करती थीं। पर्वतों की गुफायें क्रीड़ा के स्थान थी, वृक्ष सर्व ऋतुओं में फल देते थे और लोकपालों में से एक२ लोकपाल के भिन्न२ गुण धारण करते।

हे शौनक! इस प्रकार समस्त दिशाओं को जीत कर प्रिय विषयों को भोगता हुआ भी तृप्त न हुआ, क्योंकि अजितेन्द्रिय था। अजितेन्द्रिय को कितने भी भोग भोगने पर तृप्ति नहीं होती और जितेन्द्रिय तो भोगों के बिना ही तृप्त होजाता है। भाव यह है कि ज्यों २ मनुष्य विषयों को भोगता है, त्यों २ विषयभोग की इच्छा बढ़ती है और ज्यों २ इच्छा बढ़ती है, त्यों २ मनुष्य का चित्त व्याकुल होता है, क्योंकि इच्छा ही अनर्थ का मूल है। जैसे घी डालने से थोड़ी देर के लिये अग्नि शान्त हो जाती है और पीछे पूर्व से भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है इसी प्रकार भोग के पीछे थोड़ी देर के लिये इच्छा शान्त हो जाती है और पीछे दूनी हो जाती है। इसलिये विद्वान को चाहिये कि विषय भोगों की इच्छा को निर्मूल करदे विषयों का भोगना दूर रहा, विषयों का ध्यान भी न करे!

हे शौनक! ऐश्वर्य से मत्त हुआ हिरण्यकशिपु शास्त्र की मर्यादा छोड़कर बहुत काल तक वर्तता रहा। इसके उस दंड से घबराकर लोकपालों सहित सबलोक घबरागये और सिवाय अच्युत भगवान् के अन्य कोई अपना रक्षक न देख कर मधु सूदन भगवान् की शरण गये और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे–

लोकपाल–हे देवों के देव! आप एक, अद्वितीय, सच्चिदानन्द स्वरूप, निष्कल, निरंजन देव हैं, न आपका कोई शत्रु है, न आप का कोई मित्र है, क्योंकि आप सम हैं, आपमें विषमता नहीं है। फिर भी आप अपने अनुचरों की रक्षा करने को अनेक रूप धारण करके सत्पुरुषों को पालन करते हैं और दुष्टों को घालते हैं। आपके स्वरूप को कोई जान नहीं सका आप ही अपने को जानते हैं। यह दुष्ट दैत्य यज्ञ में दिये हुए हम देवताओं के भाग को बलात्कार से भोगता है, हे प्रभो! हे अंतर्यामी! इस दुष्ट से हमारी रक्षा कीजिये! आप से हम अधिक क्या कहें आप घटघट की जानते हैं, सबके आत्मा हैं, हरि हैं, ईश्वर हैं, शान्त निर्मल अंतःकरण वाले विरक्त संन्यासी आपको प्राप्त होकर फिर इस जन्म मरण रूप संसार में नहीं आते।

हे शौनक! जब इस प्रकार वायु भोजी देवताओं ने एकाग्र मन से हृषीकेश भगवान की स्तुति करी, तब मेघ के समान गंभीर नाद वाली, साधुओं को अभय करने वाली, दिशाओं में प्रतिध्वनि करती हुई अरूपी आकाश वाणी इस प्रकार कहने लगी–

आकाशवाणी–हे श्रेष्ठ देवताओ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब भय मत करो, मेरा दर्शन भूतों को समस्त श्रेय का देने वाला है। मैं इस दुष्

दैत्य की दुष्टता को जानता हूं, थोड़े काल में मैं इसकी शान्ति करूंगा, कुछ दिन तुम प्रतीक्षा करो। जब यह देवताओं से, वेदों से ब्राह्मणों से, साधुओं से, धर्म से और मुझसे द्वेष करेगा, तब यह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। जो कोई मेरे संमुख रहता है, उसी को सिद्धियां फल देती हैं, जो मुझ से विमुख होता है, उसकी समस्त सिद्धियां निष्फल जाती हैं। धर्म की सर्वत्र सर्वदा जय होती है, अधर्म की पराजय होती है। यह पापी अपने पाप से आपही नष्ट होजायगा। इसका पुत्र प्रह्लाद मेरा परम भक्त है, निर्वैर है, प्रशान्त है, जब यह उससे द्वेष करेगा, तब मैं इसे मार डालूंगा। यद्यपि इसने ब्रह्मा जी से वर पाया है, तो भी अपने महात्मा पुत्र से द्वेष करने से बचेगा नहीं।

नारद–लोकगुरु परमेश्वर के ऐसा कहने पर देवता उसको प्रणाम करके और असुर को मरा हुआ समझ कर अपने लोकों को लौट गये। हे शौनक! इस दैत्यपति के चार अद्भुत पुत्र थे, उनमें से प्रह्लाद गुणों में महान् था और महात्माओं का उपासक था।

शौनक–हे देवर्षे! दैत्यपुत्र का भगवद्भक्त होना बड़े आश्चर्य की बात है, कृपया इसके गुणों का संक्षेप से अथवा विस्तार से वर्णन कीजिये।

नारद–हे शौनक! यह प्रह्लाद ब्रह्मण्य था यानी ब्राह्मणों का और वेदों का मानने वाला था, शील संपन्न था यानी स्वभाव का सौम्य था, सत्य संध था यानी प्रतिज्ञा का पूर्ण करने वाला था, जितेन्द्रिय था, जैसा अपने को प्यार करता था; वैसा ही सब भूतों का प्रिय और सुहृत् था यानी बिना किसी उपकार के ही सबका उपकार करने वाला था, शिष्ट पुरुषों के चरणों में दास के समान नमस्कार करता था जैसे पिता पुत्र को प्यार करता है। इसी प्रकार दीनों को प्यार करता था, भाई के समान सबसे स्नेह करता था, गुरु में ईश्वर की भावना करता था यानी गुरु को ईश्वर मानता था, विद्या से, धन से, रूपसे और जन्म से युक्त था यानी चौदह विद्याओं का ज्ञाता था, कुबेर के समान धन वाला था, सुन्दर रूप वाला और उत्तम कुल वाला था, फिर भी मान और मद से रहित था, व्यसन प्राप्त होने पर भी घबराता नहीं था, देखे हुए और सुने हुए विषयों में निस्पृह यानी इच्छा रहित था, क्योंकि उनको मिथ्या जानता था, इन्द्रियों, प्राण, शरीर और बुद्धि को सदा वश में रखता था, असुर होकर भी असुरभाव से रहित था और सदा प्रशान्तकाम था यानी उसकी समस्त कामनायें शान्त हो गयी थी। हे शौनक! कविलोग उसके महान् गुणों की प्रशंसा करते हैं। जैसे भगवान् ईश्वर में उत्तम गुण छुपते नहीं हैं, इसी प्रकार अब भी उसके गुण छुपते नहीं हैं। जहाँ साधुओं के गुण गाये जाते हैं वहाँ उसके शत्रु दैत्य भी उसके गुणों का मान करते हैं, तब शिष्ट पुरुष उसके गुणों का गान करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। वासुदेव भगवान् में उसकी अचल प्रीति थी, इसी से उसके असंख्येय गुणों का माहात्म्य जानने में आता है। बालक होकर भी खेलों को छोड़ कर वह कृष्ण में मन लगाये रहता था और ऐसा तन्मय हो जाया करता था कि बाहर और भीतर की उसे कुछ खबर नहीं रहती थी। बैठा हुआ, चलता हुआ, खाता हुआ, लेटा हुआ, पीता हुआ, बोलता हुआ, भी बैठने आदि का स्मरण नहीं करता था, क्योंकि मन से सर्वदा गोविन्द का आलिंगन करता रहता था। जब कभी बैकुंठ की चिन्ता से रहित होने से चित्त क्षुभित होता था, तब रोता था; जब कभी केशव के चिन्तन से आह्लाद होता था, तब हंसता

था और उच्चस्वर से उरुगाय भगवान् के गीत गाता था, कभी गला फाड़कर बात करता था, कभी निर्लज्ज होकर नाचता था और कभी मुकुन्द भगवान् की भावना से युक्त होकर तन्मय होकर उनकी चेष्टाओं को आप करने लगता था। कभी परमानन्द स्वरूप भगवान् के संस्पर्श से पुलकित होकर परमानन्द स्वरूप हो जाता था और कभी प्रेम के आनन्द के जलसे आखें मींचकर निश्चेष्ट हो जाता था! उत्तमश्लोक भगवान् के चरणकमलों का सेवन करने से और अकिंचन, भगवद्भक्तों का संग करने से वह अपने को तो शान्त मन रखता ही था दूसरे दुःखी और दीन प्राणियों को भी शान्ति देता था।

हे शौनिक! यह प्रह्लाद किसी प्राणी से द्वेष नहीं करता था, क्योंकि सबको भगवत् का स्वरूप समझता था, सबसे मित्र भाव रखता था दीनों के ऊपर दया करता था, देह में भूल कर भी अभिमान और देह के संबंधियों में ममता नहीं करता। समस्त विश्व को ईश्वर मय देखता था, न किसी से कभी उद्विग्न होता था, न किसी को उद्विग्न करता था, सबसे सच्चे हित और मधुर वचन बोलता था, संपत्ति प्राप्त होने पर हर्ष नहीं करता था, आपत्ति में शोक नहीं करता था, धैर्य से कभी चलायमान नहीं होता था यानी सर्वदा धैर्य धारण करता था, संसार को मिथ्या समझने से उसके मन में कभी क्षोभ नहीं आता था, जब मन में क्षोभ ही नहीं आता था, तो क्रोध तो आता ही कहां से? सिवाय ब्रह्म के जगत् में कुछ दिखायी नहीं देता था यानी जगत् को ब्रह्ममय देखता था, इस लिये किसी से इस को भय भी नहीं लगता था, यह अनपेक्ष था यानी किसी की अपेक्षा नहीं रखता था, मनसे, पवित्र रहता था। व्यवहार में चतुर था, सुनते ही बात को समझ जाता था, व्यथा से रहित था, अपनी तरफ से किसी कार्य को आरम्भ नहीं करता था, जो कुछ काम प्रारब्धवश सामने आ जाता था, उसी को कर लेता था, किसी बात का कभी सोच नहीं करता था। सारांश यह है कि भगवत् का निरन्तर अनुसंधान करने से कीट भृङ्ग न्याय से भगवत् का स्वरूप ही हो गया था!

हे शौनक! प्रह्लाद के रत गुण गणों को सुनकर करोड़ों पापी से भी पापी संसार समुद्र से सहज ही में तर कर परम पद पा चुके हैं, पाते हैं और आगे जो २ सुनेंगे वे भी बिना श्रम के जन्म मरण रूप संसार से मुक्त होकर विष्णु के परम धाम को प्राप्त करेंगे। ऐसे पुत्र से द्रोह करके दुर्बुद्धि दैत्यराज नृसिंह भगवान् के हाथ से मारा गया। यद्यपि भगवान् के हाथ से मरने से वह परम पद को प्राप्त हुआ। फिर भी उसकी अपकीर्ति तो जब तक सूर्य चन्द्र हैं और गंगा जमुना हैं, तब तक रहेगी ही!

पाठक! प्रह्लाद के गुणों को धारण करना ही ईश्वर की परम भक्ति है, ज्ञान वैराग्य सब भक्ति के आधीन हैं, इसलिये श्रेयाभिलाषी को प्रह्लाद के उपरोक्त गुण बारम्बार पढ़ कर धारण करने चाहियें। जैसे रोटी खाते ही तृप्ति हो जाती है, इसी प्रकार उन गुणों के धारण करते ही तुरन्त शान्ति होती है, धीरे धीरे शांति बढ़ती जाती है, शान्त होने से मन निर्मल होता है, निर्मल मन में हृषीकेश भगवान् तुरन्त विराजमान हो जाते हैं, भगवान् के हृदय में आते ही भोग मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है, इसलिये प्रह्लाद के गुणों को आचार में लाना चाहिये, सच कहा है:-

कुं-गुण गण जो प्रह्लाद के, पढ़ें पढ़ावें नित्य ।
दर्शन पावें कृष्ण का, जग सब होय अनित्य ॥
जग सब होय अनित्य, नित्य दें कृष्ण दिखायी ।
होय परम आह्लाद, शोक भय मोह नशायी ॥
भोला ! पावे शान्ति, शुद्ध होवे रे तन मन ।
तजदे सारे काम, लिखा हरिजन गुण गण ॥

श्री सत्यनारायण पूजन

गतांक से आगे

[ले०-गुरुराम विश्वकर्मा "भक्त" "विशारद"]

ध०-आज आपकी बुद्धि फिर गई है क्या ! अनाप शनाप बक रहे हैं ।

धीरेन्द्र-सिर फिरें दुसरों के मेरे क्यों ।

ध०-मेरी दाहिनी आंखे फड़क रही है कुछ अनिष्ट होगा ही ।

धी०-वायु विकार है । आप से आप अच्छा होजायगा । ऐसी निर्मूल आशंका मत करो ।

ध०-अच्छा आप न जायं, किसी नौकर ही को भेज दें ।

धी०-उस नाते मैं एक बात भी न सुनूंगा ।

ध०-पछताना होगा पछताना मैं आपसे बार बार कहती हूं ।

धी०-अच्छी बात है, मैं इसे देखना ही चाहता हूं ।

ध०-तो आप सीख भी जायंगे ।

(३)

पं० बाल कृष्ण पांडेय के यहां श्री सत्य नारायण जी का पूजन विधिवत् समाप्त होगया । लोगों ने चरणामृत तथा प्रसाद ले ले कर अपने अपने घर की राह ली । उनके आमन्त्रित लोगों में सभी महाशय आए थे मगर एक धीरेन्द्रकुमार ही न आए थे । पंडित जी ने समझा कि उस दिन के वादविवादके कारण ही वे न आए होंगे । परमात्मा भला करे ।

खैर, दूसरे दिन मूँछों पर ताव देते हुए बाबू धीरेन्द्रकुमार जी पंडित जी के दरवाजे पर पहुंचे । अभिवादन के पश्चात् पंडित जी ने कहा कल तो आपने कृपा नहीं की ।

धी०-यही देखना चाहता था कि न जाने से होता क्या है ? देखा बिलकुल ढोंग है न । श्री सत्य नारायण जी ने क्या किया ! अरे, उस छोटी सी पुस्तक में सब गड़न्त बातें हैं ।

पं०-मैं ने तो उसी दिन आपसे कह दिया था कि अपने अपने विश्वास से है । खैर चरणामृत पान करें । (देने के लिए हाथ बढ़ाया)

धी०-रहने दीजिए । कल शाम का कच्चा दूध ख़राब होगया होगा । इसमें लाखों ज़हरीले कीटाणु पड़ गए होंगे । क्या इसे पान कराकर बदला लेना चाहते हैं । हां-हां-हां ।

पं०-बाबू साहब, चरणामृत का अपमान न करें।

धी०-तो होगा क्या ?

ज्योंही बाबू साहब के मुंह से 'तो होगा क्या ?' वाक्य निकल रहा था उसी समय उनका नौकर कालीचरण घबड़ाया हुआ सामने खड़ा होगया। और बोला सरकार अभी चलिए मालकिन ने बुला भेजा है। बड़ा गड़बड़ मामला हो गया है।

धी०-पागल, कुछ कहेभी तो ! क्या बात है।

पं०-अबे, बता तो सही।

काली०-सरकार, लुटगए लुट ! सबेरे मालकिन जब बीचवाली कोठरी में गईं तो देखा सेंध पड़ी है और लोहे वाली आलमारी गायब। चिल्ला पड़ी। मैं भी जा पहुंचा देखा तो प्राण निकल गए।

धी०-ओह ! यह गजब।

पं०-मैं ने कहा न।

धी०-अच्छा चलो।

पंडित जी तथा बाबू साहब जब पहुंचे तो देखा लोगों की भीड़ जमा है सतर्क वितर्क हो रहे हैं सेंध के पास मालकिन बेसुध पड़ी हैं। बेसुध क्यों न हो जायं जिन्दगी भर की कमाई उसी में तो थी अब राजा से रंक, मालिक से भिखारी होना पड़ेगा, बाबूसाहब गड़े जाते थे मगर मुंह से हवा उड़ रही थीं। जब पत्नी को होश आया तो कहा। देखा पंडित जी ! इनकी करतूत, ये भगवान् से आंख दिखाना चाहते थे ! अब क्या करूं।

पं०-जो हुआ सो हुआ अब कुछ प्रयत्न करना चाहिए।

धी०-जाकर मैं रिपोर्ट करदेता हूं पुलिस पता लगा लेगी।

पत्नी०-कितनी चोरियां हुई मगर पुलीसने किसका पता लगाया ?

पं०-लेकिन इसके सिवा साधन क्या है। हम लोगों की बात तो बाबू साहब मानेंगे नहीं, नहीं तो कुछ कहता भी।

धी०-नहीं साहब मानूंगा क्यों नहीं। यदि जीवन भर की कमाई मिल जायगी तो मैं अवश्य समझूंगा की परमात्मा में अवश्य सत्ता है।

पं०-मिलेगा क्यों नहीं। आप पहले तो जाकर पुलीस में रिपोर्ट कर दीजिए और नहा धोकर यह प्रतिज्ञा कीजिए। हे श्री सत्यनारायण जी भगवान् यदि मेरी जीवन भर की सारी कमाई मुझे मिल जायगी तो मैं उसकी चौथाई से आपका विधिवत् पूजन करूंगा। आप अन्तर्यामी हैं मेरे अपराध को क्षमा करें। यदि प्रभु नारायण चाहेंगे तो अवश्य सफलता होगी।

धी०-अच्छी बात है।

(४)

जिस दिन बाबू साहब को यह बात हुआ कि चोरों ने आपकी तिजोरी पास के तालाब में डाल दी है। बांछें खिलगईं। मजदूरों के साथ तालाब की तलाशी होनेलगी। तिजोरी मिली और इस अपराध में चोरों को कड़ी सजाएं भी हुईं। बस क्या था। बाबू साहब ने प्रतिज्ञानुसार श्री सत्य नारायण जी का पूजन उसके दूसरे दिन निश्चय कर दिया। ऐसा पूजन किया जैसा मुहल्ले में किसी ने न किया।

पूजनोपरान्त पत्नी, पुरोहित तथा बाबू साहब में बातें होने लगी।

प०-देख लिया आपने न ! सनातनधर्म की कैसी बातें होती हैं।

पं०-अभी न देखें होंगे। कहिए आंख खुली यान हीं ?

बा०-भाई ! अब अधिक लज्जित न करो।

यह मानी हुई बातहै कि जब तक किसी बातका प्रमाण नहीं मिलता तब तक उसपर विश्वास नहीं होता।

प०–यह तो ठीक है मगर जब यह मालूम है एक और एक दो ही हो सकता है तीन नहीं तो फिर तीन का सबूत देने के लिए हठ करने की आवश्यकता क्या है?

पं०–देखिए बाबू साहब, आपलोग स्त्रियों को कैसी हेय दृष्टि से देखते हैं। कैसी अच्छी दलील है कि कहने की बात नहीं।

बा०–हां साहब, मुझे मालूम हो गया कि प्रमाद से बहुत कुछ अनुचित बातें हो जाती हैं। खैर, इस अपराध के लिए मुझे कुछ दंड लगना चाहिए।

प०–अवश्य! पंडित जी मेरी राय में तो यह है कि आप दरवाजे पर इस छोटे से मन्दिर को तोड़वाकर एक विशाल मन्दिर बनवादें और यहीं पर प्रत्येक पूर्णिमा को श्री सत्यनारायण जी का पूजन किया करें।

पं०–दंड भी तो माकूल ही हुआ। धन्य हो देवी।

बा०–सिर आंखों पर।

तुम्हारी ओर

[ले०–श्री बी० एल० सराफ, बी० ए०, एल एल० बी०]

संगठन के बिना हिन्दु जाति का जीवित रहना असम्भव है। संगठन हिन्दुत्व का प्राण है मरणोन्मुखी जाति में नव जीवन संचार करने को स्फूर्तिदायक मंत्र है इसबात से कोई इन्कार नहीं कर सकता। पर सवालयह है कि यह कार्य जितना कहने में सरल है उतना साधन में सुकर नहीं है। कितने बहुत से सुधार के पहलू हैं तथा कितने सुधार के मार्ग हैं यह सब सामने होते हुए भी कितनी कम प्रगति हम संगठन की ओर कर सके।

धार्मिक, सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक चाहें जिस क्षेत्र में देखिये न मालूम कितना काम होने को शेष पड़ा है। कितना सुधार होना जरूरी है और कितने बहुत से मार्गों का अवलम्बन जो किया भी गया है उन मार्गों द्वारा कितना कम वास्तविक कार्य हुआ है। कारण मालूम होता है कुछ तो बद्ध कढ़ हुई हमारी वैराग्य तथा सन्तोष वृत्ति और कुछ साधनों का अनुपयुक्त उपयोग। हम देखते हैं कि धार्मिक क्षेत्र में, मन्दिरों में अव्यवस्था है। धर्म के अर्थ और महत्व को न समझने के कारण रूढ़ियों ने तथा ऊपरी आचार ने वास्तविक धर्म को निकाल बाहिर करदिया है। धर्म हमें कहीं ऐसे क्षेत्र में रखदेता है कि जहां हम जनता की सेवा से बहुत दूर अपने को पाते हैं। नवीन सभ्यता का विकास हमें अपनी कई उपयोगी संस्थाओं की

ओर अपेक्षा भी पैदाकर रहा है। हम कभी कभी समझने लगते हैं कि उन संस्थाओं के प्रवर्तकों ने बुद्धि से काम नहीं लिया। वेदान्त के सिद्धान्त को व्यापक तथा आदर्श पाते हुए भी हम केवल शिव या केवल विष्णु या राम के सिवा दूसरे की उपासना में फल प्राप्ति का स्वप्न नहीं देख सकते। हमारा धर्म का स्रोत बहाने वाला वर्ग अज्ञानता में रहते हुए भी श्रेष्ठत्व का आलाप गा रहा है। सुधारवादी आदर्श को संसार खींचकर उसकी मिट्टी पलीद कर संस्कृति को भी मिटा देने को तुले हुए हैं। वे सामयिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वस्तु के असली रूप तथा आवश्यकता की पूर्ति में लगे हैं। उन्हें आदर्शों की रम्यता की परवाह नहीं संसार अनुकरण तथा प्रशंसा करे इसलिये कोरी स्वर्ग बनाने की आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं होती कहीं कहीं तो धर्म भी परिस्थिति का ध्यान रखते हुए असनातन सा होता जारहा है धर्म का विषय एकतो वैसे ही रूक्ष है। उस ओर वैसे भी वैराग्य रहता है। (सिवा बुढ़ापे में भजन के, सो वह भी नवीन सभ्यता आवश्यक नहीं समझती) फिर उसे मोहक बनाने के लिये प्रयत्न न होकर ढ़ाई चावल की खिचड़ी पकाने का सामान इकट्ठा किया जा रहा है।

धर्म की जो वास्तविक परिभाषा है उसके अनुसार धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में बहुत कुछ समीकरण है तथा वे एक दूसरे से अलग वर्गित सफलता-पूर्वक किये नहीं जा सकते।

धर्म का कुछ हिस्सा तो अनिश्चित काल तक पहेली ही रहेगा जिसके सुलझाने का प्रयत्न प्रशंसनीय भले कहा जाय किन्तु वास्तव में आजकल की दृष्टि से लाभदायक नहीं कहा जा सकता है। यही कारण प्रतीत होता है कि अब तक इस ओर जितना कुछ भारत वर्ष ने प्राप्त करलिया है उससे आगे बढ़ने का प्रयत्न प्रायः नहीं के ही बराबर है। किन्तु जितनी कुछ खोज हो चुकी है वह ठीक मानकर आगे बढ़ने में हानि की संभावना नहीं, अधिकतर तो लाभ ही होने की सम्भावना है, किन्तु इस पहलू पर भी काम करने के लिये आदमी तैयार नहीं। धर्म की आवश्यकता ही नहीं समझी जा रही है। धर्म के आचार वाले अंगका तो थोड़ा बहुत सम्मान है भी किन्तु गुत्थियां सुलझाने वाले सिद्धांत, जैसे जैसे उदग्युग बढ़ता जाता है वैसे वैसे, मनुष्य की पहुंच के बाहर होते जाते हैं। मनुष्य उस ओर समय का व्यय करना अपव्यय समझने लगा है। भारत वर्ष में भी यह परिस्थिति आगई है किंतु इस धर्मप्राण देश में थोड़ी देर से कार-गर होगी। धर्म की ओर से ग्लानि तथा वैराग्य उत्पन्न या परिपक्व होने के पूर्व ही यदि धर्म से सम्बन्ध रखने वाली बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया जाता तो हिन्दू जाति का संगठन इस अंग की ओर से अधूरा ही रहेगा। वास्तव में धर्म के व्यापक अर्थ को सामने रखते हुए यदि इस ओर सुधार किया जावेगा तो सफलता की पूर्णतः आशा हो सकती है "धारणातः धर्मः" याने जो रक्षण करे वह धर्म है। इस दृष्टि से धर्म केवल आत्मिक रक्षण ही नहीं करता किन्तु समाज के व्यक्ति की हैसियत से भी उसका सर्वांगीन रक्षण करता है कि जिसमें वह समाज में अच्छे व्यक्ति की तरह जीवित रह सके।

(१) आ सैद्धान्तिक तत्व की दृष्टि से, नवीन वातावरण तथा वैज्ञानिक खोज को सामने रखते हुए ही सिद्धांतों का परिशीलन कालेजों, गुरुकुलों तथा राष्ट्रीय विद्यालयों और देवस्थानों तथा ट्रस्टों द्वारा कराया जाना चाहिये कि सैद्धा-

नितक अंग की दुरूहता दूर हो तथा वह हमारे जीवन से अधिक पास रहे और अन्य जातियों तथा धर्मों के सामने हम विश्वधर्म की चुनौती अपने धर्म द्वारा दे सकें।

(ग) धर्म से सम्बन्ध रखने वाले आचारों की ओर दृष्टि पात करने से हमें ज्ञात होता है कि बहुत से आचारों ने विकृत रूप धारण कर लिया है। उनका यदि पालन करना है तो उनके वास्तविक रूप में पालन करना चाहिये यदि उनका विकृत रूप ही समाज को अधिक लाभप्रद तथा समाज की वर्तमान अवस्था को अधिक उपयोगी हो तो उसका अनुसरण भी किया जा सकता है।

(घ) कुछ आचार या रूढ़ियां ऐसी हैं कि जो अपनी दुरूहता में विज्ञान को तथा बुद्धिवाद को अबतक चुनौती देती आई हैं। ऐसी रूढ़ियों से तो शीघ्र ही नाता तोड़ना पड़ेगा। किन्तु धार्मिक क्षेत्र में उनकी वैज्ञानिकता या उपयोगिता सुबूत होनेपर निश्शंक फिर अनुसरण किया जा सकता है।

(२) धर्म में फिरकेबंदी स्वातंत्र्य की निशानी है पर इसने हमें अपने भाईयों तक से दूर करदिया असहिष्णु करदिया। इसकी दो बातें तो अर्से से जर्जरित हो चुकी हैं, रही सही शीघ्र ही जर्जरित कर ढाह देने में समाज को संलग्न हो जाना चाहिये। फिरकेबंदी निर्दोष होकर रहना चाहे भले ही बनी रहे, पर जहां अनेकता हमें मानसिक दासता और परस्पर विरोध का सबक पढ़ाती है वहाँ तो उसका नाम लेना भी गर्ह्य है।

(३) स्मृति कारों की दुहाई देने के पेश्तर समय की दुहाई देना सीखे बगैर समाज जीवित नहीं रह सकती। यह सिद्धान्त भारत वर्ष को नवीन नहीं। यही कारण है कि एकही विषय पर स्मृतिकारों का एक मत नहीं है। हेर फेर करने में आगा पीछा करने में राष्ट्र की अबतक बड़ी हानि हुई। आगे के लिये यदि स्मृतियों के शब्दों की मोहकता ही कर्ण-गोचर होना आवश्यक है तो स्मृतियों के आधार पर एक नवीन कल्कि स्मृति या वर्तमान स्मृति तैयार करलेना चाहिये। जो हमारी संस्कृति को रक्षित करते हुए समय के प्रवाह के साथ चलने में सहायक हो। स्मृतियों में सैंकड़ों विधान ऐसे हैं जो आज क्रियात्मक रूप में लानेपर समाज अवस्थित न रहकर अहत व्यस्त हो जावेगी। उन विधानों पर उस समय तक के लिये अमल रोकना चाहिये जब तक कि वैसा समय न आजावे जबकि स्वतंत्रता-पूर्वक तथा लाभसहित उनका अनुकरण समाज के कल्याण के लिये किया जा सके।

इस तरह की स्मृति कायम होजाने पर फिर भी कुछ व्यवस्था के नामपर कार्य किया जा सकता है। तथा थोड़ा बहुत आधिपत्य स्मृतियों का कायम रह भी सकता है। वरना समय तो समाज की ऐसी उलट पलट कर रहा है कि स्मृतियों के नाम से ही ग्लानि होने लगेगी और 'स्वस्य य प्रियमात्मनः' का व्यापक से व्यापक अर्थ लेकर धार्मिक क्रांति का दर्शन हमें करना होगा। बारबार कहे जाने पर भी जहाँ जागने की इच्छा नहीं होती वहाँ सिवा इस परिस्थिति के और कोई गति ही नहीं।

(४) धार्मिक संस्थाओं का सुधार भी बहुत आवश्यक है क्योंकि यह धर्म के श्रोत हैं। तथा मैं तो समझता हूं कि हमारी श्रद्धा ने उन्हें द्रव्य के भंडार बना रक्खा है। इस द्रव्य को अब समाज हितार्थ श्रोत बनाना चहिये क्योंकि धर्म का उद्देश भी रक्षण करना है। वहाँ धर्म की वैज्ञानिक तथा

लोक हितैषणी व्याख्या होनी चाहिये। और समाज को चरित्रवान् बनाने का पूर्ण प्रयत्न होना चाहिये। सम्पत्ति को सदुपयोग की ओर प्रवृत्त कराना चाहिये। समाज का द्रव्य समाज की तकलीफों में काम न आया तो समाज को ऐसी संस्थाओं में पैसा देना भी अन्याय है।

(५) धार्मिक साहित्य में सबकी गति अवगाहन की हो कि विवेकानंद, राममोहन राय दयानंद प्रभृति सुधारकों द्वारा किया गया नव जीवन तथा Renaissance सफलता की सीढ़ी तक पहुंच जावे।

(६) ईश्वर को रत्न जटित सिंहासन पर बिठाकर उसे अधिक संसारी बना और भव्यभवनों का निर्माण कर हमें वास्तविकता से दूर होने का अवसर देना उचित नहीं। यह सम्पत्ति विशाल भवनों में खर्च न हो कर भगवान् के दरिद्रसन्तानों के भरणपोषण में अधिक अच्छी तरह उपयोग में लाई जा सकती है या भगवान के ज्ञान के विस्तार के साधन जुटाने में भी अच्छी तरह खर्च की जा सकती है। राष्ट्र की सम्पत्ति का एक पैसा भी अनुत्पादक मद में पड़ा रहना गहन हानि का सूत्र पात करता है। जब लाखों करोड़ों की तादाद में दरिद्र नारायण पेट के लिये धर्म की तिलांजलि देकर आत्मा और शरीर के ऐहिक सम्बंध को भी तिलाञ्जलि दे देते हैं। जीवन बहुत ज्यादा ऐहिक हो जाने में सुख तथा शांति की मात्रा कम होने तथा अन्तर्द्वन्द होने की सम्भावना देख धर्म में यह सुधार होना बिलकुल समीचीन तथा समयोपयुक्त है।

(७) श्रद्धालुओं को उनके धर्म में बाधा पड़ने की आशंका कोई धार्मिक या सामाजिक सुधार को देख अपने हृदय में नहीं कर लेनी चाहिये क्योंकि बहुतासा सुधार तो इस तरह का है कि यदि वह नहीं किया जाता तो कालान्तर में भक्तों को पालन करने के लिये कोई धर्म भी न रहेगा। राष्ट्र के दुर्बल होते होते असम्भव नहीं कि दूसरों का धर्म तथा संस्कृति इस स्वतंत्रताप्रिय जाति के सिर गढ़ादी जावे। वह दिन बड़े दुर्भाग्य का होगा और उसदिन यदि सुधार का रोनारोया मो गया तो अरण्य रोदन ही होगा।

सिद्धान्त की दृष्टि से तथा अन्तरराष्ट्रीयता की दृष्टि से तो एक धर्म तथा दूसरे धर्मों के मूलतत्वों में विशेष अंतर नहीं पाया जाता पर जाति या राष्ट्र को केवल मूल तत्वों से तो काम नहीं करना पड़ता। आनुसंगिक संस्कृति से संबंध रखने वाली सैकड़ों बातें ऐसी रहती हैं जो उन बातों के बगैर वह राष्ट्र संस्कृति-विहीन, राष्ट्रीयता विहीन तथा अपनत्व-विहीन ही हो जाता है।

इस सुधार में काम आने वाले साधन हैं चरित्रबल, अध्ययन, सतत उपदेश, परिस्थिति का कृपात्मक ज्ञान और अन्त में क्रांति, जिसमें समाज सुधार नप तुलकर नहीं होता। किसी से पूछकर तथा अनुशासन में रहकर नहीं होता किन्तु हृदय की शक्ति का आह्वान कर जबिया नवीन सिद्धान्तों की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। क्रांति जैसा उसका नाम है सिलसिले से बहुत कम ताल्लुक रखती है। हालां अंत में सिलसिला वहाँ भी कायम हो जाता है। जो लोग सुधार में विरोधी हैं उन्होंने दुर्भाग्य से परस्थिति तथा शास्त्रों का ईमानदारी से अध्ययन ही नहीं किया। वरना जहाँ सुधार नितान्त आवश्यक है वहाँ अनैक्यता हो ही नहीं सकती। इसलिये धर्म से सम्बन्ध रखने वाले उपर्युक्त विषयों पर छोटे छोटे निबंध बाँटे जाना चाहियें तथा आदमियों को पूर्णतः समझना चाहियें। एक

समिति कायम होकर उसे आधुनिक या कलिक स्मृति तैयार करने के प्रयत्न में लगजाना चाहिये। जहां संस्थाओं की व्यवस्था समझाने पर भी अच्छी होने की सम्भावना नहीं वहाँ कानूनी कारवाई अमल में लाना चाहिये। तथा सम्पत्ति के सदुव्यय के लिये नियंत्रण करना चाहिये।

विचारों की उदारता इस युग का दिनों दिन बढ़ने वाला सद्गुण है उससे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये। खोज के लिये धर्म संशोधक मंडल कायम होना चाहिये। जहां योग्यता प्राप्त व्यक्ति योग्यता का सदुपयोग कर जनता को उससे लाभान्वित करें तथा धर्म के रहस्यों का उद्घाटन करें। आर्थिक संकट दूर करने के लिये उन्हें छात्र वृत्ति भी यदि वांच्छनीय हो दी जानी चाहिये। इसके लिये अच्छी रकमें मन्दिरों द्वारा प्राप्त हो सकती हैं।

धार्मिक सुधार से अधिक महत्व रखने वाला है सामाजिक सुधार। जिस ओर भी बहुत समय से कार्य हो रहा है किंतु अपेक्षित सफलता वहां भी अबतक नहीं हुई।

धार्मिक क्षेत्र के अनुसार यहां भी रूढ़ियों ने घर कर रक्खा है। वैज्ञानिकता तथा सार्थकता चाहे रूढ़ियों में न हो किन्तु अन्ध अनुकरण अवश्य होना चाहिये। यह रूढ़ियां भी भेद से कई तरह की तथा बहुत मनोरंजक हैं। इनका तथा धार्मिक रूढ़ियों का वर्णन एक दूसरे लेख में करूंगा किन्तु यहाँ यही देखना है कि जन्म से लेकर मरण पर्यन्त तथा समाज के व्यवहारों में रोजही काम आने वाली रूढ़ियां जो वास्तविक मूल्य न रखते हुए समाज में पैठी हुई हैं इसका उन्मूलन कैसे हो ?

कई कुरीतियों तथा रूढ़ियों के सम्बन्ध में समाज की धारणा है कि वे शास्त्र विहित या धर्म विहित हैं इसलिये समय के तकाज़े का ध्यान रखते हुए भी उन्हें अक्षत रखना आवश्यक है। आदमी यह सोचते हैं कि सुधार होने में और उनकी सहमति से होने में उनके स्वर्ग का द्वार मुद्रित हो जाने की सम्भावना है। इसलिये उनका कायम रहना आवश्यक है। उन सज्जनों को यह सोचना चाहिये कि पहले तो धर्म से तथा समाज सुधार से सम्बन्ध के बारे में जिस तरह का अर्थ करने वो बैठते हैं वह ठीक ही नहीं है। यदि धर्म की वैसी आज्ञा हो भी तो इस तरह की कितनी धर्म की आज्ञायें हैं जिनका उल्लंघन करने में क्यों आगा पीछा करना चाहिए फिर यदि कोई रूढ़ी का मिटाना समाज को लाभ पहुंचाने वाली बात हो तो उसमें उल्लंघन करने में आगापीछा क्यों करना चाहिये। जहां रूढ़ियों को मिटाने में समाज का एक पहलू से रक्षण होता है। तो वह धर्म की बृहत्परिभाषा के भीतर आने के कारण हेय नहीं समझी जा सकती, यदि उनका उन्मूलन किया जाय!

धर्म के बाज़ारू अर्थ को लेकर टीका, उपनयन और स्नान की लाज बच नहीं सकती। कुरीतियों को आश्रय, आर्थिक कष्ट सहकर भी लम्बे अरसे के के लिये दिया नहीं जा सकता। बुद्धिवाद के विरुद्ध चलकर रूढ़ियों को नमस्कार करते हुए समाज की सम्पत्ति मौज की सामग्री बड़े कालके लिये नहीं रह सकती फिर इसी चिरंतन सत्य का अनुकरण हिन्दु समाज की डूबने वाली नौका का उद्धार क्यों न किया जावे ? हर रूढ़ के अनुसरण करने के समय कम से कम यदि यह ही सोच लिया जावे कि क्या इस रूढ़ि के अनुगमन करने में समाज के अधिक से अधिक हित ही संभावना है यदि नहीं तो वह एकदम उस स्थान से अलग कर दीजावे।

चरित्र बल का उपार्जन और किस अवसर के लिये करने की नीतिकार सम्मति देते हैं। प्रथा के हानिप्रद बात होजाने पर भी परंपरागत क्रम में हेर फेर न किया जाना, बुद्धि का व्यभिचार करना है। समाज सुधार के जातिगत बहिष्कार अस्त्र का सुधारों के परिचालन में कितना अच्छा उपयोग किया जा सकता है। किंतु इस अस्त्र का सबसे अधिक दुरुपयोग किया जा रहा है।

अपूर्ण

प्रमाद

[ले०–प्रभुदत्त ब्रह्मचारी "विशारद" "आश्रम"]

१

बहुत दिनों में भूल भटक कर इस द्वारे पर आया था।
अति चिर संचित पुण्य पुञ्ज भी जो थी सब ही लाया था॥

२

यहां आकर देखा अब मैंने नई चाल और नूतन रंग॥
रंग विरंगी अद्भुत शोभा अनुपम छाया अनुपम ढंग॥

३

रे पंछी इस पिंजरे में तो दो दिन रैन बसेरा है।
जो कुछ बने सुकृत अब करले आगे घोर अंधेरा है॥

४

बीत चुकी है सुन्दर घड़ियां जो थीं जीवन की उपहार।
क्यों प्रमाद-वश सोय रहा है अपने दोनों पांव पसार॥

षट् प्रमाण संग्रह

शब्द प्रमाण

[ले०—महात्मा राम "आश्रम"]

नमः शांतात्मने तुभ्यं नमो गुह्यतमाय च।
अचिन्त्याय अप्रमेयाय अनादि निधनाय च॥

'वाक्य करिणि का प्रमा शाब्दी प्रमा' वाक्य रूप करण से उत्पन्न होने वाली 'प्रमा' को शाब्दी 'प्रमा' कहते हैं। जैसे 'घटमानय' इस वाक्य के श्रवण से श्रोता पुरुष को घट के ले आने का ज्ञान होता है इसलिये यह शाब्दी 'प्रमा' कही जाती है। जिस वाक्य से शाब्दी 'प्रमा' होती है उस वाक्य का लक्षण कहते हैं 'आकांक्षा योग्यता सन्निधि-मत्पद समुदायः वाक्यम्'। आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि, वाले पदों के समुदाय को वाक्य कहते हैं 'अन्ययानुपपत्तिः आकांक्षा' जिसपद का जिस दूसरे पद के साथ समभिव्याहार है उसे आकांक्षा कहते हैं। जैसे 'घटमानय' इस वाक्य में 'घट' तथा 'आनय' यह दो पद हैं केवल 'घट' इस शब्द से श्रोता को घट के ले आने का ज्ञान नहीं होता। इसलिये 'घटमानय' इन दोनों पदों को साथ मिलाकर बोलने को आकांक्षा कहते हैं। 'वाक्यार्थाबाधः योग्यता' वाक्य के अर्थ का जो किसी प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाध न हो सके उसको योग्यता कहते हैं। जैसे 'घटमानय' इस वाक्य के अर्थ का किसी प्रमाण से बाध नहीं होता और 'अग्निनासिचेत्' इस अयोग्य वाक्य का तो प्रत्यक्ष प्रमाण से ही बाध हो जाता है अर्थात् अग्नि से वृक्ष का सींचना किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। इसलिये यह अयोग्य वाक्य कहा जाता है। 'पदाना-मविलंबोच्चारणं सन्निधिः'। पदों का विलंब रहित उच्चारण करना सन्निधिः कही जाती है। इस प्रकार के आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि वाले पदों के समूह को वाक्य कहते हैं जैसे शाब्दी प्रमा का वाक्य कारण होता है तैसे उस वाक्य गत पदों के संगति का ज्ञान भी शाब्दी प्रमा का कारण होता है। 'पद पदार्थयोस्मार्य स्मारक भाव संबंधः संगतिः' पद पदार्थ दोनों के स्मार्य स्मारक भाव संबंध को 'संगति' कहते हैं। जैसे घट पद को सुन कर श्रोता पुरुष को घट रूप अर्थ की स्मृति होती है इसलिये घट पद स्मृति का जनक होने से स्मारक कहा जाता है। और घट रूप अर्थ उस स्मृति का विषय होने से स्मार्य कहा जाता है। इस प्रकार के स्मार्य स्मारक भाव संबंध को संगति कहते हैं। इसी 'संगति' को अन्य शास्त्रकार 'वृत्ति' नाम से भी कहते हैं। यह संगति रूप 'वृत्ति शक्ति और लक्षणा इस भेद से दो प्रकार की होती है। 'पदपदार्थयो र्वाच्यवाचकभाव संबंधः शक्ति'। पद, पदार्थ, इन दोनों के वाच्य वाचक भाव संबंध को शक्ति कहते हैं। जैसे घट पद तथा घट रूप अर्थ इन दोनों का

वाच्य वाचक भाव संबंध है। घट पद वाचक है घट रूप अर्थ वाच्य है। यह शक्ति वृत्ति भी योग, रुढि, इस भेद से दो प्रकार की होती है। इस शक्ति का पुरुष को गुरु पिता आदि वृद्ध पुरुषों के व्यवहार से ज्ञान होता है। जैसे गुरु पिता आदि वृद्ध पुरुषों के 'घटमानय' इस वाक्य को सुन कर शिष्य पुत्रादि मध्यम पुरुष के घट को ले आने रूप व्यवहार को देख कर घट पद की घट व्यक्ति में 'शक्ति' है। ऐसा ज्ञान होता है अर्थात् 'घटमानय' इस वाक्य में स्थित घट पद की इस घट व्यक्ति में 'शक्ति' है इस प्रकार अज्ञात् पुरुष को प्रथम वृद्ध पुरुष के व्यवहार से ही शक्ति का ज्ञान होता है पश्चात् व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त वाक्य, वाक्य शेष, विवरण, सिद्ध पद की समीपता, इनसे भी पदों के शक्ति का ज्ञान होता है।

अब दूसरी लक्षण वृत्ति का स्वरूप कहते हैं। 'शक्य संबंधः लक्षणा' पूर्वोक्त शक्तिवृत्ति के विषय को 'शक्य' कहते हैं तथा 'वाच्य' कहते हैं उस 'शक्य' पदार्थ का जो लक्ष्यमान पदार्थ के साथ संबंध है उसको 'लक्षणा' कहते हैं। जैसे किसी आप्त वक्ता पुरुष ने मण्डप में बैठे हुए पुरुष को भोजन कराने के अभिप्राय से 'मण्डपं भोजय' यह शब्द उच्चारण किया, तब श्रोता पुरुष जड़ मण्डप में भोजन करने के अभाव को देखता हुआ मण्डप पद की मण्डपस्थ पुरुष में 'लक्षणा' करता है। मण्डप पद का 'शक्य' अर्थ गृह है उस गृह का उस पुरुष के साथ संयोग संबंध है। इसी को 'लक्षणा' कहते हैं। यह 'लक्षणा केवल लक्षणा, लक्षित लक्षणा, इस भेद से दो प्रकार की होती है। 'शक्य साक्षात् संबंधः केवल लक्षणा' पद के शक्य अर्थ का जो लक्ष्यमान अर्थ के साथ साक्षात् संबंध है वह 'केवल लक्षणा' कही जाती है।

'शक्य परंपरा संबंधः लक्षित लक्षणा' पद के शक्य अर्थ का जो लक्ष्यमान अर्थ के साथ परंपरा संबंध है उसको 'लक्षित लक्षणा' कहते हैं। जैसे भ्रमर शब्द कर्ता है, इस अर्थ के बोधन करने के अभिप्राय से आप्त वक्ता पुरुष ने 'द्विरेफोरौति' यह वाक्य उच्चारण किया। तब श्रोता पुरुष वाक्य गत दो रकारों में शब्द कर्तृत्व की अनुपपत्ति देख कर द्विरेफ पद की भ्रमर व्यक्ति में लक्षणा करता है। द्विरेफपद के शक्य अर्थ रूप दो रकारों का भ्रमर व्यक्ति के साथ साक्षात् संबंध तो है नहीं किन्तु दो रकारों का भ्रमर पद के साथ संबंध है और भ्रमर पद का भ्रमर व्यक्ति के साथ संबंध है। अतः दो रकारों का भ्रमर व्यक्ति के साथ परंपरा संबंध है। इसी परंपरा संबंध को लक्षित्लक्षणा' कहते हैं। और केवल लक्षणा भी जहल्लक्षणा१ अजहल्लक्षणा२ जहदजहल्लक्षणा३ इस भेद से तीन प्रकार की होती है 'शक्यार्थ परित्यागेन तत्संबध्यर्थान्तरे वृत्तिः जहल्लक्षणा' पद के 'शक्य' अर्थ को त्याग कर 'शक्य' अर्थ के संबंध वाले पदार्थ में जो पद की लक्षणा है उसको 'जहल्लक्षणा' कहते हैं। जैसे आप्तवक्ता पुरुष ने गंगा पद के शक्य अर्थरूप जलके प्रवाह में गृह की अनुपपत्ति को देखकर गंगा पद के शक्य अर्थ का त्याग करके शक्य अर्थ का संबंधि जो किनारा है वहां पर गृह की आधारता में लक्षणा करता है इस को 'जहल्लक्षणा' कहते हैं। 'शक्यार्थापरित्यागेन तत्संबंध्यर्थान्तरेवृत्तिः अजहल्लक्षणा' पद के शक्य अर्थ को न त्याग कर उसके संबंध वाले दूसरे पदार्थ में जो लक्षणा है उसको 'अजहल्लक्षणा' कहते हैं। जैसे पलंग पर बैठे हुए पुरुष के बोधन करने के अभिप्राय से आप्त पुरुष ने 'मंचः क्रोशन्ति' यह शब्द उच्चारण किया तब श्रोता पुरुष जड़ पदार्थ रूप मंच में शब्द के

कर्तृत्व को न देखकर मंच पद की मंचस्थ पुरुष में लक्षणा करता है। इसको 'अजहल्लक्षणा' कहते हैं। 'शक्यैकदेश परित्यागैकदेशे वृत्तिः जहदजहल्लक्षणा' पद के शक्य अर्थ के एक देशका परित्याग करके एक देश में जो पद की लक्षणा है उसको 'जहदजहल्लक्षणा' कहते हैं। जैसे आप्तवक्ता पुरुष ने 'सोऽयं देवदत्तः' यह वाक्य उच्चारण किया तब श्रोता पुरुष 'सः अयं' इन दोनों पदों की देवदत्त पिण्डमात्र में लक्षणा करता है अर्थात् जो देवदत्त काशी में देखा था सो यह है।

'तद्देश काल विशिष्ट देवदत्त पिण्डः' काशी आदि देश, व्यतीत काल, राज्यादि ऐश्वर्यवान् देवदत्त पिण्ड 'सः' पद का 'शक्य' अर्थ है 'एतद्देश काल विशिष्ट देवदत्त पिण्डोऽयम्' यह मथुरा आदि देश, वर्तमान् काल दीनता आदि धर्म विशिष्ट देवदत्त पिण्ड 'अयं, इस पद का 'शक्य' अर्थ है। यद्यपि 'सोऽयं देवदत्तः' इस वाक्य गत 'सःअयंः' इन दोनों पदों के 'शक्य' अर्थरूप देश कालादिकों का विरोध भी है तदपि देवदत्त जो शरीर मात्र है वह जो काशी में राज्यैश्वर्य संपन्न गत वर्ष में देखा था सो यह भिखारी के भेष में अब यहां पर उपस्थित है। इस प्रकारकर विरोधि एक देश का त्याग करके जो एक देशमें लक्षणा है वह 'जहदजहल्लक्षणा कही जाती है। अथवा जीव ब्रह्म के अभेद बोधक 'तत्त्वमसि' आदि महा वक्यों में भी यह लक्षणा की जाती है जैसे विवेकवैराग्यादि चतुष्टय साधन संपन्न शुद्धान्तःकरण वाले उत्तम अधिकारी पुरुष के प्रति ब्रह्मवेत्ता गुरु ने 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का उपदेश किया तदनन्तर वह अधिकारी पुरुष वाक्य गत तत्, त्वं, इन दोनों पदों के एक देश रूप अखण्ड चैतन्य में 'लक्षणा' करता है। माया उपहित चैतन्य 'तत्' पद का 'शक्य' अर्थ है। और स्थूल सूक्ष्मादि शरीर तथा अविद्या उपहित चैतन्य 'त्वं' पद का 'शक्य' अर्थ है। यद्यपि 'तत्त्वं' पदों के 'शक्य' अर्थ का सर्वथा विरोध है तथापि दोनों पदों के सामानाधिकरण्य से अभेद ही कहा है। अतः 'तत्' पद के 'शक्य' अर्थ में एक देश जो माया तथा सर्वज्ञादि माया के गुण हैं उनको त्याग कर चैतन्य मात्र एक देश में 'तत्' पद की 'लक्षणा' करता है। तथा 'त्वं' पद के 'शक्य' अर्थ में स्थूल सूक्ष्मादि शरीर और अविद्या रूप एक देश का त्याग करके चैतन्यमात्र एक देश में 'लक्षणा' करता है। परिशेष रहा जो चैतन्य मात्र सो एक रूप है 'तत् त्वं' इन दोनों पदों के विरोधि एक देश को त्याग कर जो दोनों पदों में अविरोधि चैतन्य मात्र एक देश में 'लक्षणा है इसी को 'जहदजहल्लक्षणा' कहते हैं तथा 'भाग त्याग लक्षणा' भी कहते हैं। जैसे 'शक्ति लक्षणा' आदिकों का ज्ञान शाब्दी 'प्रमा' का जनक होता है तैसे तात्पर्यज्ञान भी शाब्दी 'प्रमा' का जनक होता है। तात्पर्य-वक्तृतात्पर्य, शब्दतात्पर्य, इस भेद से दो प्रकार का होता है 'पुरुष का जो अभिप्राय है कि हमारे इस वाक्य से श्रोता को इस अर्थ का बोध होवे इस प्रकार वक्ता की इच्छा विशेष को 'वक्तृ तात्पर्य' कहते हैं। यदि विचार से देखा जावे तो यह 'वक्तृ तात्पर्य' शाब्दबोध का नियम से कारण नहीं होता। क्योंकि 'शुक' पक्षि आदिकों में 'हमारे इस शब्द से श्रोता को इस अर्थ का बोध होवे' ऐसी इच्छा के अभाव होते हुए भी 'व्युत्पन्न' पुरुष को उनके शब्द का बोध होता है अतः 'वक्तृ तात्पर्य' शाब्दबोध का कारण नहीं है। और 'तदर्थ प्रतीति जननयोग्यत्वं शब्द तात्पर्यम्' उस शब्द में जो उस शब्दार्थ के बोध को उत्पन्न करने की योग्यता है वह 'शब्द तात्पर्य' कहा जाता है।

लौकिक शब्दों का तात्पर्य प्रसंग से निश्चय होता है। जैसे 'सैंधवमानय' सैंधव नमक का भी नाम है और घोड़े का भी नाम है। भोजन समय में सैंधव शब्द से नमक का अर्थ ग्रहण होता है गमन प्रसंग में घोड़े का अर्थ ग्रहण होता है। वैदिक वाक्यों का अर्थ षट् लिङ्गों द्वारा निश्चय किया जाता है लिंग, साधन, हेतु, ये तीनों शब्द एकही अर्थ के बोधक हैं। उन षट् लिंगों का स्वरूप यह है।

' उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये' ॥

उपक्रम उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति, इन षट् लिंगों के न्यारे न्यारे लक्षण कहते हैं। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्याद्वितीय-वस्तुनो आद्यन्तयोः प्रतिपादनं उपक्रमोपसंहारौ' प्रकरण से प्रतिपादन करी हुई अद्वितीय वस्तु को प्रकरण के आदि अन्त में प्रतिपादन करने को 'उपक्रम उपसंहार' कहते हैं प्रकरण के आदि में प्रतिपादन करने को 'उपक्रम' कहते हैं। और अन्त में प्रतिपादन करने को 'उपसंहार' कहते हैं। दोनों मिलकर एक 'लिंग' कहा जाता है। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्य पुनः पुनः प्रतिपादनं अभ्यासः' प्रकरण में प्रतिपादित वस्तु को प्रकरण के मध्य में पुनः पुनः प्रतिपादन करने को 'अभ्यास' कहते हैं। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्य मानान्तराविषयता अपूर्वता' उस अद्वितीय वस्तु को श्रुति प्रमाण से भिन्न प्रमाणों की जो अविषयता है उसको अपूर्वता कहते हैं। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्य श्रूयमाणं तज्ज्ञानात्तत्प्राप्ति प्रयोजनं फलम्' प्रकरण में कही हुई वस्तु के ज्ञान से उस वस्तु की प्राप्ति रूप प्रयोजन जो श्रुतियों ने कथन किया है उसको 'फल' कहते हैं। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्य प्रशंसनं अर्थवादः' प्रकरण में प्रतिपादित वस्तु का जो 'स्तुति' रूप प्रशंसा है उसको 'अर्थवाद' कहते हैं। 'प्रकरण प्रतिपाद्यस्य दृष्टान्तैः प्रतिपादनं उपपत्तिः' प्रकरण में कही हुई वस्तु को जो अनेक दृष्टान्तों से सिद्ध किया है उसको 'उपपत्ति' कहते हैं। इन षट् लिंगों से वेद के कर्म विषयक तथा ज्ञान विषयक सर्व वाक्यों का तात्पर्य निर्णय होता है। यह 'तात्पर्य' की अनुपपत्ति ही लक्षणा वृत्ति का 'बीज' है। इति शाब्दी प्रभा-

---

चित-चोर

[ले०-श्री मती ब्रजकुमारी "प्रभाकर" आश्रम]

चित चोर मोहन चुराया तूने जो दिल है मेरा इस आन द्वारा।
बुलाया तुमको न आया फिर तू मैं पाया दुःख बहु विरह का मारा ॥
चुराई मैंने भी तेरी भक्ति न करता क्या जब मरता हो मारा।
बिना बुलाये अब आता तू 'ब्रज' तेरी पै भक्तों का नाज सारा ॥

योग-साधन

[ले०-स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती]

९६४. मेरे प्यारे राम तुम आध्यात्मिक पथ में उन्नति कर रहे हो। अब तुमने मौन धारण कर लिया है। एकान्त सेवन के लिए तुम्हारा वैराग्य और प्रेम बहुत तीव्र है, परन्तु तुम उदासीन और क्षणिक हो। मूर्खता, जिद्द, और अहंकार तुम्हारे स्वभाव से प्रकट होते रहते हैं। तुमको इस बात का ज्ञान नहीं है कि लोगों से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, तुम में धैर्य्य नहीं है, तुम्हारा चित्त चंचल है। तुम्हारा दिल हलका है। धैर्य्य उदारता और उत्साह की वृद्धि करनी चाहिए, तब ही तुम आश्चर्य जनक उन्नति कर सकते हो।

९६५. मेरे प्यारे तुम क्यों रोते हो? तुम ही राम, तुम ही कृष्ण हो, तुम ही शिव हो और तुम ही आत्मा हो। तुम ही ब्रह्म हो, तुम ही सत्य हो। मेरे प्यारे मित्र "तत् त्वं असि"।

९६६. मेरे प्यारे सुशील, ओ३म् ओ३म्, और राम, राम का बड़े जोर से उच्चारण करो और इस हाड, मांस के पिंजरे से बाहर निकलो।

९६७. मैं न तो शरीर हूं और न मन हूं, मैं शिव हूं, मैं आनन्द स्वरूप और आनन्द हूं। यह वेदान्त के बहुत ग्रन्थ पढने की आवश्यकता नहीं है। केवल इस वाक्य पर ध्यान लगाओ कि 'मैं आत्मा हूं'। ऐसा करने से अवश्य आत्म साक्षात्कार होगा।

९६८. पूर्व मीमांसा कर्म काण्ड को विधि पूर्वक करने की शिक्षा देता है। वेदों में जो कर्म काण्ड का विधान है, विशेष कर यज्ञों का जिनका जिकर संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

९६९. उत्तर मीमांसा का सम्बन्ध ज्ञान काण्ड से है। यह वेदों का वह भाग है जिसे अरण्यक कहते हैं जिसमें ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् सम्मिलित हैं। इनका विषय कार्य नहीं वरंच ज्ञान है जिसको ब्रह्म ज्ञान के नाम से पुकारा जाता है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

९७०. जिस ज्ञानी ऋषि को सब कुछ अपना आपा ही दृष्टि गोचर होता है और जो सब में ऐक्य-भाव लखता है उसके लिए अज्ञान और शोक का कोई स्थान नहीं रह जाता।

९७१. ईशोपनिषद् का यह मंत्र उस ऋषि के अनुभव को प्रकट करता है जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके सम्यक् दर्शन प्राप्त करलिया है।

९७२. यह उसका आत्मानुभव है। जिसकी ऐसी भावना होजाती है वह बिलकुल निर्भय हो जाता है। उसको सर्वत्र एक आत्मा ही दृष्टि गोचर होता है उसकी एक दृष्टि हो जाती है। यह जीवन का उद्देश है।

९७३. यही भाव गीता के ६ ठे अध्याय के २८वें श्लोक से प्रगट होता है।

सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

६७४. योग से युक्त आत्मा अपने आपको सब भूतों में देखता है और सबको अपने आप में देखता है। उसको सर्वत्र यही भान होता है। जो मनुष्य इस श्लोक के भाव में दत्त चित्त रहता है उसको शीघ्र आत्मज्ञान होजाता है। यह श्लोक निरन्तर ध्यान और विचार के लिए बहुत आवश्यक है।

६७५ अज्ञान और शोक, अज्ञानी और संसारी पुरुष पर अपना प्रभाव जमाते हैं परन्तु उस मनुष्य पर यह कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते जो ज्ञानी है और सर्वत्र एक ही आत्मा को अनुभव करता है। जिस आत्मा को ब्रह्मज्ञान अर्थात् आत्म साक्षात्कार होजाता है उसका संसार रूपी वृक्ष-बीज सहित नाश को प्राप्त होजाता है।

९५६. क्या तुम आत्मा हो? या मन हो या शरीर हो? यद्यपि तुमने १००८ बार मेरे लेख को पढ़ा है परन्तु तुम फिर भी अपने को मन और शरीर समझते हो और साधारण वाद विवाद में भी संयम से गिरजाते हो। तुम्हारा अहंकार इतना प्रबल है। जैसे लोग तुम्हारे शरीर और मन की निन्दा कर सकते हैं वैसे ही तुम भी अपने शरीर और मन की निन्दा करते हो इससे तो वह निन्दक तुम्हारे मित्र हुए फिर भी तुम्हारे नाराज़ होने का क्या कारण? तुम अब भी कमज़ोर हो और आध्यात्मिक क्षेत्र में तुमने पूर्णता नहीं प्राप्त की है। तुम अभी शरीर ही हो। निन्दा की परवाह मत करो। तुम पिछली बातों पर क्यों पश्चात्ताप करते हो? यह बहुत बुरा स्वभाव है। ऐसे स्वभाव से चित्त को शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अपने आपको तुच्छ बातों और निन्दा से ऊपर उठाओ उस दृढ़स्थ चट्टान की भान्ति दृढ़ता से खड़े रहो। उन लोगों का भला करो जो तुमको मारने या ज़हर देने का प्रयत्न करते हैं।

६७७. गोपीचन्द भरथरी की माता रानी मैनावती ने अपने पुत्र को यह शिक्षा दी थी "अमृत खाना, पुष्पों की शय्या पर सोना, लोहे के किले में रहना, परं सुन्दरियों के साथ रमण करना। इनका आध्यात्मिक अर्थ यह है। १ जब अत्यन्त क्षुधा हो तब खाना चाहिए। यह अच्छी तरह हज़म होगी। अमृत के तुल्य स्वादिष्ट होगी। भूख ही सबसे श्रेष्ठ व्यञ्जन है। २ जब निद्रा अत्यन्त सतावे तब सोवो, उस समय यदि तुम पत्थर की शिला पर भी सोओगे तो गहरी नींद आवेगी" ३ विरक्त संन्यासी और महात्माओं के संग में रहो। कोई प्रलोभन तुम पर आक्रमण नहीं करेगा। ४ ब्रह्माकार वृत्ति बनाकर ध्यान करो और ब्रह्म में रमण करो, यही परं सुन्दरियों के साथ रमण करना है।

९७८. एक राक्षस राजा विक्रमादित्य के पास तीन पुतलियां लेकर आया और राजा से कहा "यदि आपके दरबार के पण्डित एक सप्ताह में मुझे यह न बतलावेंगे कि इन तीनों में कौनसी पुतली सबसे श्रेष्ठ है तो मैं सब पण्डितों को खाजाऊंगा" इस बात को सुनकर सब पण्डित भय से कांपने लगे क्योंकि वह यह पहचानने में असमर्थ थे कि इनमें से श्रेष्ठ कौनसी है, परन्तु राजाराम शास्त्री नाम का एक बुद्धिमान पण्डित भी वहां था। उसने इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया और रहस्य को खोज निकाला। उसने राक्षस से कहा "जिस पुतली के एक कान में से दूसरे कान में लोहे की सलाख़ बड़ी आसानी से चली जाती है वह सबसे ख़राब है। जिस पुतली के कान में से सलाख़ मुंह में जाती है वह मध्यम श्रेणी की है और जिसमें से सलाख़ कान से हृदयतक जाती है

वह सर्व श्रेष्ठ है"। राक्षस उत्तर सुनकर लज्जित हुआ और चलदिया। विक्रमादित्य ने राजाराम को बहुत पुरस्कार दिया।

६७६. इसके आध्यात्मिक अर्थ यह हैं:—वह शास्त्र के श्रोता जो एक से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं निकृष्ट हैं। जो ज्ञान की बातों को सुनकर किसी अवसर पर दूसरों को सुनाते हैं वह मध्यम श्रेणी के हैं परन्तु जो शास्त्र या गुरु से ज्ञान प्राप्त करके उसे अपने हृदय में धारण करके उस पर अमल करते हैं वह उत्तम व श्रेष्ठ हैं।

६८०. एक बार एक विद्वान् षट्-शास्त्री ब्राह्मण पण्डित और एक चाण्डाल लाहौर में नौका में बैठे रावी नदी को पार कर रहे थे। वायु के प्रचण्ड वेग के कारण नौका उलट गई। पण्डित और चाण्डाल दोनों डूबने लगे। जल उनके मुख में प्रवेश करने लगा। उस समय अभिमानी और धृष्ट पण्डित ने चाण्डाल से कहा "नदी के उपरी भाग से उस जल को मत पी जिसको मैं पी रहा हूं। ओ चाण्डाल तू इस जल को गन्दा मतकर, तू इसके नीचे से जल पान कर। पाठक उस अभिमानी पण्डित के तुच्छ विचारों को देखो। यह मृत्यु के गाल में फंसा हुआ है और भय से कम्पायमान हो रहा है। परन्तु ब्राह्मणपन के मिथ्याश्रेष्ठ भाव का त्याग नहीं करता। क्या तुम्हारे विचार में सैकड़ों जन्म धारण करने पर भी ऐसे मिथ्याचारी को आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है? उसको षट् शास्त्र पढ़ने का क्या लाभ हुआ? ऐसे तुच्छ विचार वाले और संकीर्ण हृदय ब्राह्मण पण्डितों को हज़ार बार धिक्कार है।

६८१. एक बार एक बनिया एक साधु के पास मंत्र लेने के लिए गया। साधु ने उत्तर दिया कि जब मैं दूसरी बार तुमसे मिलूंगा तब मंत्र दूंगा। बनिए ने साधु से बार २ आग्रह किया कि मुझे शीघ्र मंत्र दीजिए। साधु ने बिलकुल इनकार कर दिया। कुछ वर्ष पश्चात् साधु बनिये के पास आया। उसने अपने भिक्षा के पात्र में कुछ कीचड़, बालू और मल मूत्र रक्खे और बनिए के पास भिक्षा मांगने गया। बनिया साधु के लिए चावल मिठाई, खीर, हलवा इत्यादि लाया। उसने इस अभिप्राय से अच्छे २ भोजन बनाए कि साधु जी मुझे दीक्षा देंगे। साधु ने बनिए से कहा "सब पदार्थ मेरे प्याले में डालदे"। बनिए ने उत्तर दिया स्वामी जी मैं इस गन्दे प्याले में इन पदार्थों को किस तरह डाल सकता हूं। कृपा करके प्याले को साफ करें और मेरे पास लावें मैं सब पदार्थ इसमें रख दूंगा। साधु ने उत्तर दिया—

जब इस तुच्छ पदार्थ का यह हाल है तो पवित्र मालिक को तुम्हारे हृदय में कैसे रख सकता हूं जो हृदय लोभ, क्रोध, अहंकार और ईर्षा आदि अनेक बुराइयों से भरा है। जब तुम्हारा चित्त इस प्याले की भान्ति गन्दा है तो मैं किस तरह इसमें दीक्षा का संस्कार कर सकता हूं? बनिया लज्जित होकर चलागया और उसने दान, निष्काम सेवा आदि से अपने चित्त को शुद्ध किया और फिर साधु के पास जाकर दीक्षा ली। पहले क्षेत्र तय्यार होना चाहिए! तुम उपदेश की बहुत चिन्ता क्यों करते हो? अपने आपको पवित्र करो, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा आदि दैवी गुणों को धारण करो उपदेश आप तुम्हारे पास चला आवेगा।

एक चींटी जो कि चीनी के पहाड़ पर रहती थी दूसरी चींटी से मिली जो कि नमक के पहाड़ पर रहती थी। दूसरी ने कहा "मैं ऐसी प्रसन्न

नहीं हूं। जैसी की तू है, कारण मैं नमक के पहाड़ पर रहती हूं। पहली ने उत्तर दिया तू मेरे साथ आ मैं तुझे प्रसन्न करूंगी। मैं तेरी जिह्वा को सदैव मीठी रक्खूंगी। दुःखी चींटी प्रसन्न चींटी के साथ मीठे पहाड़ पर चली गई और एक सप्ताह यहां रही। प्रसन्न चित्त ने उससे पूछा मेरी सखी अब तेरा चित्त कैसा है ? उसने उत्तर दिया अब भी मेरा वही हाल है कारण मेरा मुंह खारी है। उसने कहा अपने मुंह को ओषधी से धोकर साफ करले और यह चीनी का साबुन ले इससे तेरे मुंह का खारी पन दूर होजावेगा कारण वर्षों नमक के पहाड़ पर रहने से तेरी यह दशा होगई है। उसने उस चींटी की बात मान ली और उसका मुंह आठवें दिन मीठा होगया। वह भी प्रसन्न रहने लगी।

६८४. कुछ जिज्ञासुओं के चित्त में छिपी हुई वासनाएं जैसे लालच, मोह, अहंकार आदि बने रहते हैं। यह दोष उनके चित्त में ऐसे ही चिमटे रहते हैं जैसे कि चींटी के मुंह में नमक चिमटा हुआ था। यह उस नमक के पहाड़ वाली चींटी की भान्ति शिकायत करते हैं कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई, हमको आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ, हम आत्मानन्द का अनुभव नहीं कर रहे हैं। अपने मन और चित्त को जप और निष्काम सेवा से शुद्ध करो। चित्त की समस्त इच्छाओं और मलीन वासनाओं को साफ कर डालो फिर तुम्हारे हृदय में परमात्मा की ज्योति दृष्टि गोचर होगी।

६८५. कमाल को कबीर ने इस बात पर बहुत लताड़ा कि उसने एक साहूकार को जो कि कुष्टी था यह बताया था कि दो बार राम नाम उच्चारण करने से तेरा कुष्ट दूर हो जावेगा। साहूकार ने दो बार रामका नाम लिया परन्तु उसकी अवस्था में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। कमाल ने यह वार्ता कबीर जी को सुनाई। कबीर जी इस बात को सुनकर बड़े नाराज हुए और कमाल को कहा कि तैंने मेरे कुलको दाग लगा दिया जो साहूकार को दो बार रामनाम उच्चारण करने के लिए कहा। राम नाम एकबार लेना ही बहुत है। अब साहूकार को गंगा जी में खड़ा करके उसके शिर को लकड़ी से पीट और उससे कहा कि केवल एकबार हृदय से राम का नाम उच्चारण कर। कमाल ने कबीर जी की आज्ञानुसार कार्य किया। उसने साहूकार के शिर पर लकड़ियां मारीं। साहूकार के शिर से खून की धारा बह निकली और उसने अपने हृदय से एकबार रामनाम उच्चारण किया और वह पूर्ण स्वस्थ होगया। कबीर जी ने कमाल को तुलसीदास जी के पास भेजा। तुलसीदास जी ने तुलसी के पत्ते पर राम नाम लिखा और उसका जल ५०० कोढ़ियों पर छिड़का वह सबके सब अच्छे होगए। कमाल को बड़ा आश्चर्य हुआ, फिर कबीर जी ने कमाल को सूरदास जी के पास भेजा। सूरदास जी ने कमाल से कहा कि नदी में जो लाश तैर रही है उसको ले आ। सूरदास जी ने मुरदे के कान में केवल एक बार राम शब्द कहा और मुर्दा उठ खड़ा हुआ, कमाल को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह पुलकायमान होगया। मेरे मित्रो, कालिज के विद्यार्थियो, बैरिष्टरो, जजो, और डाक्टरो राम नाम की बड़ी भारी महिमा है और प्रेम से परमात्मा का नाम अपने हृदय से उच्चारण करो और परमानन्द और अमरत्व को प्राप्त करो।

अपूर्ण

भक्तों का ध्येय

[ले०—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी विशारद आश्रम]

भगवान् और भक्त दोनों का अङ्गाङ्गीभाव है। जिस प्रकार शरीर के अवयव और शरीर भिन्न नहीं हैं, इसी प्रकार भक्त और भगवान भिन्न नहीं हैं, यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। जिस परम ध्येय को सर्वोच्च माना जाता है वही भगवान् की ईश्वरसत्ता है। अर्थात् जहां पर जो सचाई है वह सब ईश्वरीय है। ईश्वर सत्यस्वरूप है, त्रिकाल में उसकी सत्ता विद्यमान है। "ऋतं सत्यं परं ब्रह्म" सत्य स्वरूप परमात्मा के भक्त भी सत्य मार्ग के अनुसरण करने वाले होते हैं। जो भगवान् का ध्येय है वही भक्तों का ध्येय है। इसमें लेश भी भेद नहीं। इस भाव को प्रकट करते हुये भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी गीता में कहते हैं:-

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

अर्थात् मेरे भक्त मेरे में मनवाले होते हैं, मेरे में उनके प्राण संचारित होते हैं और परस्पर मुझे जनाते रहते हैं निरन्तर मेरा ही कथन करते रहते हैं इसी में सन्तुष्ट रहकर मुझही में रमते हैं।

भगवान् के भक्तों का यह आचरण है कि वे अपने परम इष्ट प्रभु में निरन्तर अपना मन जुटाये रखते हैं। संसार के किसी भी विषयों में उनका मन नहीं आसक्त होता। निरन्तर ईश्वर का चिन्तन करना उनका कार्य है। संसार के सुख दुःख में समान मन रहते हैं, हां जब कि उद्देश्य बाधा आकर उपस्थित हो तब अवश्य चित्त क्षुभित होता है परन्तु धैर्यपूर्वक सब को सहन करते हैं। अपने आप वे किसी से राग द्वेष नहीं करते किन्तु संसारी जीव जो राग द्वेषमय होते हैं, उनसे भी राग द्वेष के भाव रखते हैं। निरुक्त शास्त्र में वर्णन किया है कि:-

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कार्याणि कुर्वतः।
उत्पद्यन्ते त्रयोः पक्षाः मित्रोदासीनशत्रवः॥

अर्थात् वन में रहने वाले मुनि के भी (जो संसार से कोई संम्बन्ध रागात्मक नहीं रखता) तीन थोक-पक्ष मित्र उदासीन, शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। तो भक्तों के भी शत्रु तो अकारण ही उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु भक्त उन पर भी दया का विशेष भाव रखते हैं। प्रह्लाद को जब नृसिंह भगवान् ने हिरण्य-कश्यप को मारकर वर मांगने को कहा तो भक्त शिरोमणी प्रह्लाद ने अपने पिता की सद्गति रूप ही वर माँगा। भक्त हरीदास जी को जब वर मांगने की आकाश वाणी हुई तो अपने घातकों की बुद्धि सुधारने का वर माँगा। इसी प्रकार दुष्टों पर दया करना जैसे भगवान् का ध्येय है उसी प्रकार भक्तों का भी है। यह मानी हुई बात है कि भक्तों के विरोधि सदा ही बने रहते हैं। उनकी पैशाची वृत्तियों से भक्तों को बड़े २ कष्ट सहन करने पड़ते हैं या यूँ समझो कि वे भक्तों के निरखने की कसौटी हैं जिस पर भक्तों के धैर्य,

साहस, आत्मिक बल अर्थात् सत्यता की परख होती है।

काल की विचित्र गति है। संसार की दशा को उन्नत करने के साधन महापुरुषों का प्रादुर्भाव बहुत ही अगण्य संख्या में होता है। जबकि अधोगति के साधनभूत नीचों की अनन्त संख्या निरन्तर उत्पन्न होकर कोई न कोई धर्म के अंग की हानि पहुंचाकर ही मिटती है। यही कारण है कि संसार के शत प्रतिशत मनुष्यों के भाव तामसिक एवं राजसिक गुणों में विलीन होते हैं।

भारतवर्ष एक ऐसा स्वर्णमय मर्त्यलोक का अंश है कि जो ऐतिहासिक दृष्टि से संसार में सर्वोपरि रहा है। जिसकी आचार परम्परा एवं ज्ञान गरिमा की तुलना कोई भी राष्ट्र नहीं कर सका। किन्तु वर्तमान युग की भीषण झंझावात से आज वह उन्नति और ज्ञान न मालूम कहां विलुप्त होगया। यदि उस प्राचीन पुण्य संस्कृति के उदाहरण कहीं दृष्टि गोचर होते हैं तो वे हैं भगवान् के प्यारे भक्त। जिनसे संसार का परम उपकार होता रहा है, वर्तमान में जो सत् और असत् का विभाग करके सत् की स्थापना करते हैं। भविष्य जिन के पुनीत कर्मों का सारांश है। उनकी ज्ञान, भक्ति रूपी नदी निरन्तर संसार दावानल से तपाये हुये जिज्ञासुओं को स्नान पान द्वारा सन्तुष्ट करती है। इस निरन्तर बहने वाली संसारी नौका के वे ही कर्णधार हैं। उनका आचरण ही संसार का सबसे ऊंचा आदर्श आचरण है। उनकी जीवन की विभूति ही पारमार्थिक सत्ता की विभूति है। भक्त का हृदय समुद्र की भांति गम्भीर एवं विशाल होता है। भक्त की इच्छा संसार को सुखमय बनाने की रहती है। आत्मा से आत्मा का उद्धार होता है। जो सुख दुःख में समान रहकर उद्देश्य को धैर्यपूर्वक पालन करते हैं उनकी इच्छाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्तिते॥

उन निरन्तर लगे हुये प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं बुद्धि योग देता हूं कि जिससे वे (भक्त) मुझे प्राप्त होते हैं। इसी लिये भक्त लोग नित्य प्रति सतत अभ्यास से ईश्वर को भजते हैं तभी कालान्तर में अपने ध्येय को प्राप्त करते हैं। आरम्भ में ही किसी को सिद्धि नहीं मिलती, अभ्यास और वैराग्य से ज्यों २ हृदय की कालिमा धुलती जाती है त्यों २ ध्येय स्वच्छ होता जाता है। भक्ति के प्रेमी पाठको! संसार संसर्ग से है, ज्यों २ इसका संसर्ग छोड़ोगे त्यों २ यह तुम्हें बन्धनों से मुक्त करता जायगा। इसी प्रकार कालान्तर में ध्येय की की प्राप्ति भी सुगम होनी आवश्यक है। किन्तु ध्येय को स्मरण रखना, इसके भूलने से सब रास्ता बिगड़ जाता है।

बन्धुओ! यदि चाहते हो प्राप्त करना श्रेय को।
भूलना मत याद रखा सतत अपने ध्येय को॥

भगवान् की चाह

[ले०-श्री प्रभुदत्त शर्मा शास्त्री]

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्तायत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥ गीता

प्रायः इस बातको सबही मनुष्य जानते हैं कि चौरासी लाख अन्य योनि भोग लेने के बाद इस जीवको मनुष्य योनि मिलती है। इस योनि में आकर मनुष्यों को प्रकृति के स्वभाव से दो तरह के काम करने होते हैं। पहिला धर्म का द्वितीय पाप का। धर्मयुक्त जो काम करते हैं उनको दैवयोनि मिलती है, जिसको कि स्वर्ग लोक में अनेक प्रकार के सुख मिलते हैं, और उस धार्मिक तप धन के व्यय होजाने के पश्चात् धर्मरूपी धन को कमाने के लिए फिर इस लोक में आना होता है, इसी भाव को श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज अपने अनन्य प्रिय-भक्त अर्जुन के प्रति गीता में कहते हैं कि- "ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" अर्थात् हे अर्जुन! वे पुण्यशाली पुरुष विशाल स्वर्गलोक के सुखों को भोगकर पुण्यों के क्षीण होजाने के अनन्तर इस मर्त्यलोक को प्राप्त होते हैं।

ये जो चमकते हुये तारे रात्रि को दृष्टि गत होते हैं उनही पुण्यशाली पुरुष श्रेष्ठों के आश्रम हैं। देखिये तैत्तिरिय ब्राह्मण "देवगृहावै नक्षत्राणि" १-२-६ एक आचार्य का मत है कि जो मनुष्य इस लोक में यज्ञादि कर्म करता है वह इस लोक को प्राप्त होता है। यही नक्षत्र कहलाते हैं। देखिए तैत्तिरिय ब्राह्मण- "य इह यजते अमुं स लोकं नक्षते, तन्नक्षाणां नक्षत्रत्वम्" १-५-२४। अस्तु दूसरे रहे पाप कर्म करने वाले पुरुष, बस उनकी जितनी और जैसी दुर्गति होती है उनको लिखने में यह लेखिनी असमर्थ है, यह क्या-"असित गिरिसमं स्यात्कज्जलंसिन्धु पात्रे, सुरतरुवरशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी। लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालम्" इतना साधन यदि वर्तमान हो, तब भी दुर्जन के पाप तथा दुःख लिखने में नहीं आ सकते कि बहुना। पापी पुरुष को अनेक पारलौकिक श्वान काकादि भी दुःख देने लग जाते हैं। अब आप अपने हृदय मन्दिर में इस बातको खूब विचारो कि हमें कौनसा कार्य करना उचित है। बस सबके मन में यही उद्गार निकलेंगे कि परमेश्वर हमें अच्छे कामों में लगाए। जिससे कि हम पारलौकिक सुख का ही अनुभव करें, दुःख का कभी नहीं। अब ऐसा विचार मनमें उठता है कि उस धर्म को हम कैसे उपार्जित कर सकते हैं। विचार करने से यही बुद्धयारूढ़ होगा कि अच्छे गुणों के धारण करने से तथा दुर्गुणों को भगा देने से जैसे कि दुर्जनों का सङ्ग छोड़ना, तथा सत्सङ्गति अवलम्बन करना "सत्सङ्गत्वे निःसङ्गत्वं, निःसङ्गत्वे विमोहनम्। निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः" श्री मच्छङ्कराचार्य। सत्सङ्ग से निःसंग की प्राप्ति होती है, निसंग से निर्मोहत्व अर्थात् विषयों से निवृत्त हो जाना। निर्मोह से सत्य का पूरा २ ज्ञान होता है, सत्य का पूरा ज्ञान होने पर पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।

इस सत्संगति में पाकर हरेक पुरुष को उच्च व श्रेष्ठ विचार करने होते हैं। तथा मीठी बोली, अश्लील शास्त्र विरुद्ध आलापों का बहिष्कार सत्संगति द्वारा ही होता है। बस हम तो कहेंगे कि सत्संगति करने वाला पुरुष साक्षात् देवता का रूप है। तथा कुसंगी पुरुष एक प्रकार का राक्षस ही है। भक्तवर श्री तुलसीदास जी आज भी अपने डङ्के की चोट पर सुना रहे हैं कि "को न कुसंगति पाय नसाई" अर्थात् कुसंगति की प्राप्ति होजाने पर कौनसा पुरुष नष्ट नहीं हुवा। एक नीति का कवि कहता है कि "वरं प्राण त्यागो न पुनरधमानामुपगमः" अर्थात् अधिक विपदावस्था में भी दुर्जन पुरुष का साथ न चाहना चाहिए, चाहे प्राणों का त्याग क्यों ना होजावे। सफेद मकान धुवें से काला ही होगा, इसी प्रकार यदि कोई सज्जन भी दुर्जन का सङ्ग करता है तो उसको भी दुर्जन संग करना उचित नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि-

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहि विधाता॥
बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय।
सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय॥

मोक्ष के सर्व उपायों में तथा सत्संगति में सत्संगति ही बड़ी है। देखिए जरा-

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अङ्ग।
तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्सङ्ग॥

इत्यादि श्री तुलसी दास जी के वचन इस विषय में आपको बार बार हाथ उठाकर कह रहे हैं कि-

जाग मुसाफिर स्टेशन आने वाला है, फिर दुःख पाना होगा।

और देखिये जरा-

सत्संग परमं तीर्थं सत्संगः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्संगं कुरु सर्वदा॥

प्रिय पाठकवृन्द! यही है वह सत्संगति जिसके द्वारा पापी दुर्गुणमय कलिकाल में भी सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई सजनकसाई, आदि निकृष्ट योनि में पैदा होने वाले व्याधादि भी इस संसार सागर को गोष्पद बनाकर तरगये। अधिक क्या कहें, अपने जीवन को जिसने सफल बनाना है वह निःसन्देह एक बार सत्संग में आवे। क्योंकि इसी के द्वारा मनुष्य के बुरे भाव बदलते हैं। तथा हरि भजन में मन स्थिर रहता है। स्मरण रखना चाहिए कि हरिभजन में जाति आदि की कोई आवश्यकता नहीं है सर्वोच्च ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुवा भी कोई क्यों ना हो, यदि उसने इस ब्राह्मण योनि में आकर के भी अपने सच्चे मनसे परमपिता परमात्मा का स्मरण न किया, तो समझलो उसने व्यर्थ ही अपना जन्म रत्न खो दिया। और क्या निकृष्टयोनि में पैदा होने वाली भिलनी ने भी आन्तारिक भक्ति द्वारा अपने झूठे बेर श्री रामचन्द्र जी महाराज को क्या नहीं खुवाए थे।

प्रियपाठक वृन्द! ब्राह्मण कुल भूषण अजामील का वृत्तान्त आपने कहीं पढ़ाहोगा कि उसका प्रेम अष्टमपुत्र नारायण में ही सबसे अधिक था। जिस समय अजामील यमराज की पुरी की हवा खाने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक उसको अपने प्यारे पुत्र नारायण का स्मरण हुवा, और नारायण को आगमनार्थ पुकारा भी। बस इसी समय अजामील ने इस स्थूल देह का परित्याग किया। बस इधर तो नारायण ने अपना सच्चा भक्त जानकर अपने दूत भेजे, और इधर यमराज ने पूर्वोपार्जित अधर्म के प्रभाव से नरक लोक में आनयनार्थ अपने दूत भेजे, दोनों तरफ बड़ा वादविवाद

हुआ। आखिर में यमराज के दूतों को भगाकर विष्णु के दूत उसको अपने लोक में लिवा लेगये।

प्रिय पाठक वृन्द! यह है आपका प्यारा पिता परमात्मा इसको एकबार सच्चे मन से याद करो, जिससे कि श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रगण्य हो जावो, सर्वत्र जिससे आपकी कीर्तिलता फैलजाये।

प्रिय पाठक महाभाग! सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, ये चार युग हैं इनमें कलियुग के सिवाय और युगों में बड़े दान तप यज्ञादि के करने से परमेश्वर की प्राप्ति हो सकती है परन्तु कलियुग में तो "कली भक्तिः प्रशस्यते" इस उक्ति के अनुसार सच्चे मन से भजन गुणगान करन से उसको प्राप्त हो सकता है। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज का कथन है कि-"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" अर्थात् मुझको जो जिस रास्ते से आना चाहते हैं, मैं उन्हें उसी रास्ते से लेता हूं। इस उक्ति से जिस रस्ते पुरुष उसको चाहता हो वह उसी रास्ते से उसको अपनावेगा। इनमें कलियुग में तो भक्ति ही प्रधानतयः निर्दिष्ट की है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

इस पद्य की तरफ दृष्टि को फेंकते हुये विचारो जरा मनमें कि श्री कृष्ण चन्द्र महाराज अपने अनन्य प्रियभक्त नारद के प्रति क्या कह रहे हैं कि-ना मैं वैकुण्ठ ही में स्थिर रहता हूं ना मैं योगिजनों के हृदय मन्दिरों में भी निश्चय से रहता हूं। मैं हर वक्त उन मनुष्यों के पास तैयार रहता हूं कि जो मेरे गुणगान करते हैं, जो मुझे हरवक्त याद करते हैं।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

जो परमेश्वर की कृपा मूक पुरुष को खूब बोलने वाला बनादेती है, और जो लंगड़े को पर्वत पर से पार लगादेती है बस मैं उसी माधव को नमस्कार करता हूं। इस श्लोकोक्त किसी महान् पुरुष को एकबार नमस्कार करो, और हमेशा के लिए उसको अपने मन्मन्दिर में ही स्थापित करलो महानुभावो! नास्तिकाई न दिखलावो, आस्तिक बन जावो, उस महापुरुष से डरो, जहां पर हमारा शास्त्र कहता है कि-

मन्त्रे तीर्थे द्विजे दैवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

मन्त्रों में, तीर्थों में, द्विज में, देवताओं में, ज्योतिषियों में, और वैद्यों में जैसी जिस पुरुष की भावना होती है, उसको उनके द्वारा वैसी ही सिद्ध होती है। अब आप विचार कीजिए कि मन्त्र ब्राह्मण तीर्थ आदि के विषय में आप का शास्त्र क्या आज्ञा देता है। महाराज श्री रामचन्द्र जी जब राजा जनक की सभा में विराजमान थे तब जैसा भाव जिसके मन के अन्दर था वैसा ही दिखाया या नहीं हमतो कहेंगे कि जैसी मूर्ति रमतां के हृदय पर खिंची हुई होगी वैसी ही विचित्र अपनी मूर्ति को प्रत्यक्ष दिखलाकर भक्त हितकारी श्री परमपिता परमात्मा दर्शन देंगे तथा अन्त में ध्रुव और प्रह्लाद के समान आपको अजर अमर करदेंगे, जिनका नाम आज भी हिन्दुमात्र के बच्चे २ के मुख से सुना जा रहा है। परन्तु एक बात और भी है, वह क्या कि जब तक इस हृदयागार को शुद्ध न बनालोगे, जब तक इस हृदयावास को साफ शुद्ध न करके उसको उचित वास्तव्य स्थान न बनालोगे तब तक उस आपके पिता का शुभागमन मुश्किल नहीं, सर्वथा दुर्लभ है। यहां पर यह शंका होती है कि शरीर में क्या कुटिलता है। उत्तर इस शरीर में ममता मोह मद अहंकार काम क्रोध आलस्यादि ऐसे शत्रु रहते

हैं जो कि उसकी प्राप्ति में बाधा रूप हैं। उनको निकालो, फिर उसकी भक्ति की तरफ ध्यान दीजिए देखिए जरा श्री गुसाईं तुलसीदास जी क्या कहते हैं कि रकार के उच्चारण करने से शरीरकी अर्गल खुल जाती है इसलिए शरीर के सबदोष भी निकल जाते हैं। फिर मकार की अर्गल लगादेने से हृदय शुद्ध ही रह जाता है उसमें पापादि प्रवेश करने को किसी छिद्र को न पाकर वहाँ से निराश होकर लोट जाते हैं। यही है शरीर को साफ रखने का एक उपाय। सज्जनों! उस परमपिता परमात्मा का स्मरण मनन ध्यानादि करना हरेक मनुष्य का कर्तव्य है। और उसका सच्चे मनसे ही याद करना सर्वथा श्रेष्ठ है। आज दिन हम सैंकड़ों वार हजारों वार उससे प्रार्थना करते हैं कि हमारे कष्टों को आपही आकर जल्दि हटावो, पर हमें उन का गुण-गान करने के बाद ही ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए जिससे कि वह आपकी इस पुकार को सुनें।

प्रिय पाठकवर्ग! स्वायम्भू मनु के दो मानसिक पुत्र थे। प्रथम का नाम प्रियवृत्त, तथा द्वितीय का नाम उत्तानपाद था। राजा प्रियवृत के आग्नीध्र नामक लड़का हुवा, और आग्नीध्र के भी नाभि पुत्र उत्पन्न हुवा और नाभि के ऋषभदेव जी महाराज पैदा हुवे। उनके परमेश्वर की कृपा से १०० वेद-पारग पुत्र उत्पन्न हुवे। उनमें सबसे बड़ा भरत था, जिनके नाम से आज भी भारत वर्ष प्रसिद्ध है, और तीन जन्मों के पश्चात् जो हरिमय ही होगया। और नौ राजा नव द्वीपों के अधिपति हुवे, और ८१ महात्मा कर्म शास्त्रों के प्रवर्तक हुवे। तथा महात्मा विष्णु परायणआत्म विद्याविशारद अर्थशपि महाभाग मुनि होगये। कवि हरि अन्तरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन आविर्होत्र द्रुमिल चमस कर भाजन, ये इन महात्माओं के नाम थे। ये केवल जगत् के कल्याणार्थ ही इतस्ततः पर्यटन करते थे। सुर सिद्ध किन्नर-यक्ष गन्धर्व नाग इत्यादि सब लोकों का भ्रमण करते थे क्योंकि ये अव्याहतगति थे। एक समय में वे नव राजा निमिकी यज्ञ भूमि में पहुंचे। राजर्षि निमि ने इन महात्माओं का बड़ा आतिथ्य सत्कार किया उस समय राजा निमि ने कहा कि:-

"धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम्।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः"॥

अर्थ-हे महाभागो! हमारे लिये उन भागवत धर्मों को कहो, जिनसे शरणागत पुरुष को भगवान् आत्मा का बोध करा देता है। इस प्रश्न को सुनकर सबसे प्रथम कवि बोले सुनिए महाराजः-

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावात् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः॥

अर्थ-जो हो नहीं उसमें आत्मा का भाव मानने से (अर्थात् देह इन्द्रिय मन इत्यादिकों में ही आत्मा का भाव मानने से) जिस पुरुष की बुद्धि उद्विग्न होगई है उस पुरुष को नित्य अच्युत के पादाम्बुज की उपासना करनी ही अकुतश्चिद्भ 'अर्थात् जिस को किसी जगह से भय न हो' मानता हूं। क्योंकि जिसकी उपासना करने से सम्पूर्णभय दूर हो जाते हैं। भक्त के लिये ये नियम उचित है। तथाहि-

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायैव समर्पयेत्तत्॥

अर्थात् भक्त जन जो कार्य काय से वचन से मनसे इन्द्रियों से बुद्धि से वा आत्मा से करता है वह नारायण के लिए समर्पण करदेता है।

श्रृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसंगः॥

अर्थ–लज्जारहित किसी का साथ न करने वाला भक्त रथांगपाणि श्री विष्णु भगवान् के जन्मों को तथा कर्मों को सुनता हुवा तथा तदर्थक गीत वा नाम उच्चारण करता हुवा, जो भ्रमण करे वह भक्त कहलाता है।

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

इस प्रकार अपने प्रिय की कीर्ति के श्रवण करने से कभी रोता है कभी हंसता है कभी गायन करने लगता है, ये हैं भक्त के लक्षण।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्
सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः॥

आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी तारागण सूर्य चन्द्रमा प्राणी दिशा वृक्षादि नदी समुद्र इत्यादिकों को तथा और भी कोई दृष्टिगत हो इन सबको हरि का देह मानकर प्रणाम करे, येही हैं सच्चे भक्तों के चिन्ह। क्या आज दिन संसार में शुकसमान उपरोक्त नियमों का पालन करने वाला मिलेगा। नहीं नहीं, उत, हां, ऐसे महानुभाव के प्रताप के वर्त्तमान रहते ही संसार का अस्तित्व वर्तमान है, ऐसा महाप्रभु बंगाल देश के अद्वितीय भक्त श्री चैतन्यदास जी महाराज हैं जिनका नाम आज संसार के घर २ में गूंज रहा है।

प्यारे पाठकवर्ग! उस परमात्मा की भक्ति को हृदय में अवकाश दो जिससे तुम पर कोई संकट न आवेगा। और यदि आवेगा तो भी कोई फिकर नहीं। क्योंकि वह कहता है:–

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इस वचन का पालन करने के लिए अवश्य तुम्हारी सुधि लेगा।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

यदि आप उसको चाहोगे, तो वह भी आपको अपनायेगा। ॐ शान्तिः ३।

उपदेशामृत।

[ले०–श्री स्वामी भोले बाबा जी]

संत समागम इस लिये उत्तम है कि वह साधक को भगवत की ओर ले जाता है। जिनके समागम से तुमको बाहर भीतर पवित्रता प्राप्त हो, उनका ही समागम करो, जिनके संग से राग द्वेष मनमें बढ़े उनका समागम मत करो।

जबतक 'मैं' और 'तू' की भावना जाग्रत होती है तब तक ही मनुष्य में वाक्य चातुर्यता रह सक्ती है। जब परात्पर भगवत् का साक्षात्कार होता है तबतो इतना भी बोल नहीं सक्ता कि मुझे भगवत् का साक्षात्कार हुआ है।

जिसमें शुभ जीवन जाग उठता है, उसको केवल सत्य की ही आकांक्षा रहती है, असत्य पदार्थों में उसको प्रेम नहीं होता, तत्वानुसंधान में ही उस का जीवन व्यतीत होता है और उसकी सब क्रियायें भगवत् भक्ति के मार्ग को प्रकाश करने वाली होती हैं।

दिन में अथवा रात में कोई मुहूर्त ऐसा नहीं है कि जिस मुहूर्त में भगवत् आपके समीप न

हों। तुम्हारी सब क्रियाओं को भगवत् देखते हैं, सोते, बैठते, उठते जागते, खाते पीते प्रभु तुम्हारे साथ रहते हैं।

जब भगवत् प्रेम की ज्वाला भक्त के हृदय में पूर्ण रीति से भभक उठती है तब भगवत् सिवाय दूसरा कुछ भी उसमें नहीं रहता। भगवत् प्रेमकी ज्वाला सबको जलाकर भस्म कर देती है।

नीति तीन प्रकार की है (१) संसारियों की नीति इसमें वाणी की मिठास, चतुराई, बाह्य पदार्थों का ज्ञान, धनी, मंत्री राजा आदि के गुणानुवाद होते हैं। (२) समय का सदुपयोग, कहे अनुसार बर्तना, शत्रुओं को ठगाई में न आना, हरिजनों से मिलना, मिलने में विनय दर्शाना और भगवत् भजन करना, यह सदाचारी मनुष्यों की नीति है और (३) आंतरिक शोधन, गूढ रहस्य का ज्ञान, इन्द्रिय निग्रह, चित्त संयम, वासनाओं का त्याग, ये मुमुक्षुओं कि नीति है।

प्रभु की सेवा में जीवन समर्पण करना, मानुषी भावों से मुक्त होना और प्रभु में ही निष्ठा रखनी, इस का नाम भक्ति है।

जो भगवत् के अनन्य भक्त होते हैं, उन को किसी का दास नहीं बनना पड़ता।

जब तक मनुष्य लौकिक जीवन में रहता है तब तक वह अलौकिक सुख सम्पत्ति का स्वाद नहीं ले सका।

संसार में सन्मान पाने के लिये जो संसार को छोड़ता है, वह संसार प्रेमी ही बना रहता है, भगवत् प्रेमी नहीं होता।

भजन

लौ लगि जनि मारै तूँ मोहि,
जौ लगि मैं देखूँ नहिं तोहि ॥ टेक ॥
इस के बिछुरे मिलन कैसे होई,
इहि विधि बहुरि न चीन्हैं कोई ॥ १ ॥
दीनदयाल दयाकरि जोई,
सब सुख आनन्द तुम सूँ होई ॥ २ ॥
जनम जनम के बन्धन खोई,
देखण दादू अहि निशि रोई ॥ ३ ॥

२

संग न छाँड़ी मेरा पावन पीव.
मैं बलि तेरे जीवन जीव ॥ टेक ॥
संग तुम्हारे सब सुख होई,
चरण कमल मुख देखौं तोहि ॥१॥
अनेक जतन करि पाया सोई;
देखौं नैनों तो सुख होई ॥ २॥
सरण तुम्हारी अन्तरि बास,
चरण कमल तहां देहु निवास ॥३॥
अब दादू मन अनत न जाई,
अन्तर बेधि रह्यो लौ लाई ॥ ४ ॥

३

कैसे करूं कछु नहीं आवत जिय दुःख कैसा भारी है॥
कोई गाय रावल समझावो,
यह क्या बात विचारी है॥
आठ मास दश गर्भ में राख्यो,
शरद गर्भ ऋतु न्यारी॥
सो कैसे जननी विष प्यावे,
बाजी कठिन करारी है॥
राम नाम उरसों नहीं छोड़त,
हठ कर कहत पुकारी है॥
बार बार बहु विधि समझायो,
विनती कर कर हारी है॥

४

प्यारी हा कैसे कर मान रचाऊं॥
कैसे कर नैन तरेरों तुमपै,
कैसे कर भौंह चढ़ाऊं॥
कैसे कर बैन कुटिल निकसै मुख,
कैसे कर डीठ दुराऊं॥
कैसे कर झटक नील पटकर सों,
हा हा तुमहिं खवाऊं॥
कैसे कर विनय ललित मुख प्यारी,
इन श्रवनन नहीं सुनाऊं॥
ललित किशोरी श्रमिय तुमहिं क्यों,
देख धीर उर लाऊं॥

५

लाल तोहि हौंदी आज मनाऊं॥
झीनी स्वरसों रट मुरली में राधे राधे गाऊं॥
अलकन छिटक अंश अपने तव वेणी शीश गुथाऊं॥
दे तव भाल अरुण बेंदी हौं केसर खौर लगाऊं॥
तुम बैठो गह मौन मानिनो हौं बलि विनय सुनाऊं॥
भ्रकुटी तान विलोको तुमहो टोडी हाथ लगाऊं॥
अम्बर झटक मोर मुख बैठो हौं नहीं सम्मुख आऊं
कुटिल बोल बोलो घूंघट से हौं झुकि नैन मिलाऊं॥
ललित किशोरी नवल वधु तुम हौं नव रसिक कहाऊं

६

तेरी खाक फकीरी दिल से चाह न छूटी॥
मान बड़ाई जा दिन भाई ता दिन किसमत फूटी॥
अपने में सारो जग देखत रसकी लूटा लूटी॥
या मति बिन दिन दिन तनु छीयो शिरकी कूटाकूटी
पूरी विपति मंहती आई प्रीति राम से छूटी॥
सेवा पूजा सब ठग हारी मिसल जालकी खूटी॥
चेटक नाटक नट विद्या से सारी खिलकत लूटी॥
मिले नहीं बसुदेव दुलारे प्राण सजीवन बूटी॥

७

बन पड़े तो नेकी करना आखिर तो है मरना॥
धन यौवन के जोर जुलम में इतना नहीं उछलना॥
कमी जाल में फंस जाओगे जस जंगल को हरना॥
सुनी गरीबन को हक नाहक इतना नहीं रगरना॥
दो दिनकी हशमत है तेरी साहिब सों कछु डरना॥
कुफल करें अधरमकी दौलत मिसूल बांसका फलना
अभी तुझे मालूम ना पड़ता अन्त पड़ेगा मरना॥
जान बूझ टेढ़े रस्ते पर बन्दे कदम न धरना॥
देव देव कह राम राम भव सागर पार उतरना॥

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।